वेद-प्रकाश

जीवन-यज्ञ

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥

(अथर्व० २।३५।५)

शब्दार्थ—**(यज्ञस्य)** मानवजीवन-रूपी यज्ञ के **(प्रभृतिः)** भरण-पोषण का साधन **(चक्षुः)** दर्शनशक्ति है **(मुखं च)** और मुख भी है। **(वाचा श्रोत्रेण मनसा)** वाणी से, कान से और मन से **(जुहोमि)** मैं हवन ही करता हूं। **(इमं यज्ञं)** यह मेरा जीवन-यज्ञ **(विश्वकर्मणा)** जगत्-रचयिता प्रभु ने **(विततं)** विस्तृत किया है, इसमें **(देवाः)** सब देव, दिव्यभाव **(सुमनस्यमानाः)** प्रसन्नतापूर्वक **(आयन्तु)** आवें, समाविष्ट हों।

व्याख्या—वेद में प्रभु को यज्ञ नाम से पुकारा है। उसका बनाया हुआ यह संसार भी यज्ञरूप ही है। उसके इस विशाल संसार में मेरा जीवनरूपी यज्ञ भी उसी ने रचा है जो सौ वर्ष तक चलनेवाला है। मेरी योग्यता इसमें है कि मैं इस शरीर से कोई अयज्ञिय कार्य न होने दूं। यज्ञ दैव्य कर्म है और वेद की भाषा में **"अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या"**—यह आठ चक्र और नौ द्वारों वाली मेरी शरीररूपी देवपुरी है। अतः इस मन्त्र में मुख्य रूप से दो ही उपदेश हैं—पहला यह कि हम अपनी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से जो जानें और करें वह यज्ञ-रूप में हो, वह व्यक्ति और समाज की भलाई के लिए हो। दूसरी बात यह कि उत्तम विचार और आचार के हम इतने अभ्यस्त हो जावें कि सम्पूर्ण दिव्यभाव अपने निवास के लिए हमारी इस शरीरपुरी को प्रसन्नता और उत्सुकतापूर्वक अपने निवास के लिए चुनें।

बोध-कथा

आचरण ही श्रेष्ठ आभूषण

अपने समय की सर्वश्रेष्ठ नृत्यांगना नगर सुन्दरी वासवदत्ता भिक्षु उपगुप्त के पास पहुंची। भिक्षु के चरणों में प्रणति करने के बाद आदर के साथ पूछा—"भन्ते, व्यक्ति का सब से बहुमूल्य आभूषण क्या है? साथ ही यह भी बतलाइए देव, नारी का श्रेष्ठ आभूषण क्या है?"

"व्यक्ति का चरित्र-आचरण ही उसका श्रेष्ठ आभूषण है।" भिक्षु उपगुप्त का उत्तर था। आभूषणों से लदी, सौन्दर्य से परिपूर्ण नगर की प्रसिद्ध नर्तकी की की भृकुटि तन गई। उसकी भंगिमा पुकार-पुकार कर जैसे कह रही थी—मेरे ये सहस्रों लक्ष से अधिक मूल्य के हीरे, मोती-माणिक्य से अमूल्य आभूषण, रत्नहार का क्या कोई मूल्य नहीं, फिर पुरुष मात्र ही नहीं, योगियों और तपस्वियों की साधना और तपस्या को भरमाने वाला यह अप्रतिम सौन्दर्य क्या मोल नहीं रखता? उसने कुछ नजर टेढ़ी-तिरछी कर थोड़े व्यंग्य से इतराते हुए स्वर में कहा—"कुछ समझ में नहीं आया, कुछ समझाकर स्पष्ट बतलाइए।"

भिक्षु उपगुप्त ने कहा—"नारी-स्त्री का श्रेष्ठ आभूषण वह तत्त्व है, जो उस के स्वाभाविक सौन्दर्य में अभिवृद्धि करे।" सर्वाङ्ग सुन्दरी-आभूषणों से लदी नर्तकी ने कुतूहल से भरकर कहा—"कुछ समझ में नहीं आया, यह कैसे हो सकता है?"

भिक्षु ने कहा—"अपनी जिज्ञासा का समाधान चाहती हो तो अपने ये सारे कीमती आभूषण उतार दो।" नर्तकी ने बिना संकोच के सारे आभूषण तुरन्त उतार दिए। नर्तकी की आँखें और वाणी जैसे कह रही हो—"इससे मेरी जिज्ञासा का तो कोई समाधान नहीं हुआ।"

भिक्षु उपगुप्त ने कहा—"सुन्दरि, अपने वस्त्र भी उतार दो।"

नर्तकी एक क्षण हिचकिचाई, परन्तु भिक्षु की आँखों में किसी भी प्रकार की चाह, आकर्षण न देख उसने भिक्षु के उस आदेश का भी पालन कर दिया। हां, उसका समस्त मुखमण्डल ही नहीं, सारा शरीर भी लज्जा से अभिभूत हो उठा। भिक्षु ने आदेश दिया—"देवि, कृपा कर अब कुछ मेरी ओर निहारो।"

किन्तु लज्जा से लाल मुख और शर्म से नीची दृष्टि किए राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नर्तकी भिक्षु के प्रति अगाध विश्वास भरकर भी इस आदेश का पालन नहीं कर सकी।

भिक्षु उपगुप्त अपने आसन से खड़े हो गए और संयमित तीव्र वाणी से बोल उठे—"देवि, नारी के सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण उसकी यह प्रकृति से दी हुई लज्जा ही है। इस लज्जा से ही नारी के वास्तविक चरित्र-आचरण की परख होती है।"

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ७ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये फरवरी १९९५

सम्पा॰ अजयकुमार आ॰ सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सामान्य जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन–३

श्रेय का चुनाव करो, प्रेय का नहीं :

कठोपनिषद् की सीख

एक बार महर्षि वाजश्रवा अरुण के पुत्र उद्दालक ने विश्वजित् यज्ञ किया। उन्होंने अपने इस यज्ञ में अपना सारा धन दान में दे दिया। इस समय उसके छोटे से पुत्र नचिकेता ने देखा कि उसके पिता बूढ़ी, दूध न देने वाली ऐसी ठूंठ गौएँ दान में दे रहे हैं जो अपने जीवन का अन्तिम जल पी चुकी हैं, जिनका घास खाना समाप्त हो गया है, जिनकी हड्डियां काम करना छोड़ चुकी हैं, जिनका दूध भी अन्तिम बार दुहा जा चुका है, ऐसी गायों के दान से उन्हें यज्ञ का फल कैसे मिलेगा। उस के मन में अनुभूति हुई विश्वजित् होने की आकांक्षा से किए गए इस यज्ञ में व्यर्थ की चीजों के दान से आनन्द लोक में जाने की अपेक्षा आनन्द शून्य लोक में जाना पड़ेगा। इसलिए उसने अपने पिता से कहा "पिता जी, आप मुझे किसे दे रहे हैं ?" पिता चुप रहे, परन्तु पुत्र नचिकेता ने अपना प्रश्न तीन बार दोहराया। अन्त में पिता ने नाराज होकर कहा–"तुझे देता हूं यमराज को।"

पिता की बात व्यर्थ न चली जाए, यह सोच नचिकेता ऐसे यमाचार्य गुरु के पास पहुंचा जो साक्षात् यम था। वेदों में गुरु को आचार्य कहा गया है और आचार्य को मृत्यु कहा गया है–

आचार्यो वै मृत्युः यम अथवा यमाचार्य घर पर नहीं थे। तीन दिन बाद वह घर लौटे। तब तक नचिकेता, उनके ही द्वार पर बिना खाए-पीए उनका रास्ता देखता रहा। यमाचार्य ने जब देखा कि बालक अपने निश्चय पर पक्का है– तब उसने नचिकेता से कहा "हे अतिथिदेव, मुझे क्षमा करो, तुम तीन दिन मेरे निवास स्थान पर मेरे घर पर रहे हो–

इसलिए एक-एक रात्रि के बदले मुझ से अपने अभीष्ट पदार्थ तीन वर मांग लो।''

नचिकेता ने पहला वर मांगा-''मेरे पिता का क्रोध शान्त हो जाए । जब मैं घर लौट कर जाऊं तब वह प्रसन्नता से मेरा स्वागत करें। यमराज ने वर दिया-''तेरे पिता पहले की तरह क्रोध रहित हो जाएंगे, अब दूसरा वर मांगो।''

नचिकेता ने कहा-''मेरे पिता विश्वजित् यज्ञ से भय, भूख, बुढ़ापे, भूख-प्यास, शोक से शून्य आनन्द से परिपूर्ण स्वर्ग लोक जाना चाहते हैं, उस स्वर्ग लोक को जिस यज्ञाग्नि से प्राप्त किया जा सकता है, उस यज्ञाग्नि-अग्नि-विद्या का दान दें । नचिकेता का अनुरोध था-

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।
स त्वमग्निःस्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वःश्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।।

यमराज ने नचिकेता को वह यज्ञाग्नि, अग्नि विद्या समझाई । उन्होंने बतलाया कि यज्ञाग्नि से अभिप्राय इस भौतिक अग्नि से नहीं है, भौतिक यज्ञाग्नि 'ब्रह्मयज्ञ' का प्रतीक है । असली यज्ञ ब्रह्मयज्ञ है, उसमें ईंटें नहीं चुनी जातीं, त्रिकर्म करना पड़ता है । त्रिसन्धि जीवन के तीन मोड़ों में से गुजरना पड़ता है । उल्लेखनीय है-वैदिक संस्कृति में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रम हैं । परन्तु उनकी सन्धियां तीन हैं, ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करने की पहली सन्धि, गृहस्थ से वानप्रस्थ में प्रवेश की दूसरी सन्धि और वानप्रस्थ से संन्यास में प्रवेश करने की तीसरी सन्धि । सम्भवतः इन तीनों सन्धियों को लक्ष्य कर यमाचार्य ने समझाया कि तीन सन्धियों एवं तीन कर्मों को कर । अपने लिए नहीं, प्रत्युत समाज के लिए यज्ञमय जीवन व्यतीत कर पूर्ण कर सकता है, यही ब्रह्मयज्ञ है, यमाचार्य ने इस अग्नि को 'स्वर्ग्य अग्नि' या 'नाचिकेत अग्नि' का नाम भी दिया है ।

दो वर देने के बाद यमाचार्य ने नचिकेता से तीसरा वर मांगने के लिए कहा तो नचिकेता ने कहा-''यमाचार्य, यह बतलाइए कि मृत्यु के बाद क्या होता है?'' यमाचार्य ने कहा-''यह सूक्ष्म बात सरलता से समझ में नहीं आती, इसका हठ छोड़ दे।'' इतना ही नहीं, यम ने कहा ''मनुष्य-लोक में जो-जो दुर्लभ भोग हैं, वे सब तू मांग ले । वाहनों और घोड़ों सहित इन स्वर्ग की सुन्दरियों से भी अपनी सेवा करा ले, परन्तु मृत्यु के रहस्य के विषय में मत पूछ।''

ये ये कामाः दुर्लभाः मर्त्यलोके,
सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमाः रामाः सरथाः सतूर्याः,
न हि ईदृशाः लम्भनीयाः मनुष्यैः ॥
आभिः मत्ताभिः परिचारयस्व,
नचिकेतो मरणं मा अनुप्राक्षीः ।१।१।२५

नचिकेता ने यमाचार्य से जिज्ञासा की—क्या ये सांसारिक सुख सदा बने रहेंगे, ये सांसारिक सुख-भोग कल नहीं रहेंगे । श्वोभावा, दूसरे ये इन्द्रियों का तेज समाप्त कर देते हैं– **जरयन्ति तेजः**, और तीसरे धन—सम्पत्ति से किसी की तृप्ति नहीं हो सकती **'न वित्तेन तर्पणीयः मनुष्यः'** और यह सारा जीवन अल्प-अवधि के लिए है, ये नृत्य गीत आपको ही शोभा दें । मैं उस आनन्द की खोज में हूँ, जिस में जीवन भर भटकना न पड़े । मृत्यु के रहस्य को जानने के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

श्वोभावाः मर्त्यस्य यत् अन्तक एतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितं अल्पम् एव तव एव वाहाः तव नृत्यगीते॥
१।१।२६

न वित्तेन तर्पणीयः मनुष्यः लप्स्यामहे वित्तम् अद्राक्ष्यम् चेत् त्वा।
जीविष्यामः यावत् ईशिष्यसि त्वं, वरः तु मे वरणीयः स एव॥
१।१।२७

नचिकेता अपनी बात पर दृढ़ रहा । यमाचार्य के नाना प्रलोभन उसे लुभा नहीं सके। इस प्रकार शिष्य की परीक्षा और उस में विद्या ग्रहण की योग्यता अनुभव कर उसे सीख दी—''सुख दो प्रकार के होते हैं—पहला है प्रेय और दूसरा है श्रेय । जो सुख शुरू में सुख की अनुभूति देता है, परन्तु परिणाम में दुःख देता है, वह प्रेय है (अविद्या है)। और जो प्रारम्भ में दुःख देता है और अन्त में सुख देता है, उसे श्रेय निःश्रेयस् कहते हैं। जो व्यक्ति श्रेय ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है और जो लक्ष्य आदर्श से पतित हो जाता है । वह पुरुषार्थ से गिर जाता है।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।१।२।१

संसार की यात्रा प्रारम्भ करते समय हर व्यक्ति के सामने दो रास्ते खुले होते हैं—पहला रास्ता श्रेय का है और दूसरा रास्ता प्रेय का। इन दोनों रास्तों को यमाचार्य ने विद्या और अविद्या भी कहा है । भौतिक अभ्युदय चाहने वाला प्रेय को चुनता है । और अमृतत्व का इच्छुक व्यक्ति श्रेय की ओर प्रवृत्त होता है । परस्पर एक दूसरे से मिले हुए श्रेय और

प्रेय व्यक्ति के पास आते हैं, बुद्धिमान् व्यक्ति भली भांति सोच कर उन्हें पृथक्-पृथक् करता है । इन दोनों के रास्ते एक दूसरे से उल्टे हैं-विपरीते । इन दोनों में से पहला विद्या या अध्यात्म मार्ग का रास्ता है और दूसरा सांसारिक या जीवन मार्ग–अविद्या का रास्ता। विवेकी व्यक्ति श्रेय का मार्ग चुनता है, प्रेय का नहीं । नचिकेता विद्या मार्ग-श्रेय मार्ग का पथिक था, फलतः उसे संसार के विभिन्न प्रलोभन लुभा नहीं सके– **न त्वा कामाः बहवः अलोलुपन्** । सामान्यतया जो ज्ञान विद्या कहलाता है–संसार का सम्पूर्ण भौतिक ज्ञान-विज्ञान कहलाता है, उपनिषत् की परिभाषा में वह अविद्या है। सामान्य मूर्ख व्यक्ति, भौतिक योगक्षेम के निमित्त प्रेय चुनता है । कठ उपनिषत् के पहले अध्याय की दूसरी वल्ली का दूसरा मन्त्र यही सन्देश देता है:

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।
१।२।२

यमाचार्य ने स्वीकार किया– हे नचिकेता, तुमने श्रेय का वरण किया, प्रेय के आकर्षण में नहीं पड़े । इसलिए तुम आत्मज्ञान के सच्चे अधिकारी हो, इसलिए आत्मज्ञान सिखलाया ।

अध्यात्म का स्वरूप : सच्चा आत्मज्ञान

सारे वेद शास्त्र जिस पद का वर्णन करते हैं, सब प्रकार की तपस्याएं जिसका बखान करती हैं और जिसके जानने की इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, संक्षेप से वह पद ओ३म् है । ओ३म् द्वारा स्मरण किया जाने वाला-कभी नष्ट न होने वाला अविनाशी आत्मतत्त्व ही ब्रह्म है । इस ओ३म् को जान कर ही अध्यात्म में गति हो सकती है, इसी का सहारा लेकर मानव ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

वैदिक संस्कृति में ओ३म् शब्द की बड़ी महत्ता है । माण्डूक्य उपनिषद् में ओ३म् की ही चर्चा है । इस उपनिषत् के ऋषि की मान्यता है कि वर्त्तमान भूत और भविष्यत् सब ओंकार की ही व्याख्या हैं– **ओंकारम् इत्येतद् अक्षरम् इदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानम् भूतं भवत् भविष्यत् इति** । ओङ्कार चतुष्पाद कहा जाता है अकार, उकार मकार तथा अमात्र । अकार जाग्रत अवस्था, उकार स्वप्नावस्था, मकार सुषुप्ति अवस्था का सूचक है । ये तीनों समान रूप से मनुष्य के भौतिक स्वरूप के प्रतिनिधि हैं, केवल अमात्र उसके आध्यात्मिक स्वरूप का बोध कराता है । इस प्रकार चतुष्पाद ओङ्कार सम्पूर्ण मनुष्य के शरीर और आत्मा का प्रतीक है ।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥२।१५

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥२।१६
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥२।१७

आत्मा को जानो

जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि इस भौतिक शरीर में यह देहहीन आत्मा निवास करता है—'**अशरीरं शरीरेषु**, यह महान् आत्मा और विभु परमात्मा को जान कर शरीर के नाश को और इस संसार के उपद्रवों को देख कर धीरज नहीं खोता, वह शोक-सागर में नहीं डूबता। **महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा धीरः न शोचति ।**' इस प्रकार यह आत्मा न तो कभी पैदा होता है और न ही कभी मरता है । न तो वह किसी में से हुआ है और न इस में से कुछ हुआ । इसका जन्म नहीं होता, वह सदा बना रहता है, नित्य है, शाश्वत है । शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरता।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
१।२।१८

वर्णन किया गया है कि यह आत्मा अणु से भी छोटा है और महान् से भी महान् । यह प्रत्येक वाणी के अन्दर छिपा है, जिस आदमी में किसी तरह की इच्छा शेष नहीं है, उसे अपने मन और इन्द्रियों की शक्ति से इसके दर्शन होते हैं, उसके सभी तरह के दुःख मिट जाते हैं।

अणोरणीयान्महतो महीयान् आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥
१।२।२०

स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि फिर यह आत्मज्ञान कैसे, अगले मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है— यह आत्मा का ज्ञान उपदेश सुनने मात्र से प्राप्त नहीं होता, न बुद्धि से और न बहुत ज्ञान प्राप्त करने से, यह आत्मा का ज्ञान केवल उसी को मिलता है जिसका वह वरण करता है । अर्थात् जिसे वह प्रभु स्वयं स्वीकार करता है । ऐसे व्यक्ति को उसी के आत्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं । मन्त्र इस प्रकार है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥
१।२।२३

आत्मा का साक्षात्कार तो हो जाता है, परन्तु जो व्यक्ति **न अविरतः दुश्चरितान्** जो व्यक्ति दुश्चरित्र से हटा नहीं है, जो अशान्त है, जिसका मन और इन्द्रियां वश में नहीं हैं– ऐसे व्यक्ति को आत्मा-परमात्मा के दर्शन नहीं होते ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४

शरीर से पृथक् आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति तथा भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक जीवन कैसा होना चाहिए, इसकी चर्चा करते हुए यमाचार्य ने नचिकेता का पथ-प्रदर्शन किया । उन्होंने बतलाया कि आत्मा को रथ में बैठा रथी मानो, शरीर को उसका रथ मानो और मन को लगाम । यहां इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है और इन्द्रियों के विषयों को सड़कें । इस प्रकार जब शरीर, इन्द्रियों और मन के साथ आत्मा की पटरी बैठती है, तभी सच्चा सुख मिलता है । प्रासंगिक मन्त्र इस प्रकार है–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥१।३।३,४

यमाचार्य ने नचिकेता को सीख दी–जो व्यक्ति विवेकयुक्त बुद्धि रूपी सारथी से सम्पन्न हो, मन रूपी लगाम जिसके वश में हो, वह संसार मार्ग को पार कर सर्वव्यापक परमात्मा के सच्चे मोक्षधाम को प्राप्त करता है । मन्त्र इस प्रकार है–

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९।

उक्त मन्त्रों में एक सुन्दर रूपक है, इसमें आत्मा के लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के कुछ साधनों का उल्लेख है । इन मन्त्रों में बतलाया गया है कि इस संसार रूपी यात्रा में जीवात्मा को दुर्लभ मनुष्य रूपी शरीर रथ के रूप में मिला हुआ है। आत्मा रथी है, बुद्धि सारथी है जो मन रूपी लगाम को पकड़े हुए रथ के इन्द्रिय रूपी घोड़ों को प्रयुक्त कर रहा है । वेद की उक्ति **'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्'** में निर्दिष्ट नित्य ऊपर उठते हुए परमानन्द के स्रोत के लक्ष्य तक जीवात्मा को पहुंचना है और यह लक्ष्य उसी स्थिति में पूर्ण हो सकता है, जब रथी, रथ और रथ में प्रयुक्त इन्द्रियां रूपी घोड़े सभी सावधानी से अपना-अपना कार्य करने में सक्षम और समर्थ हों । यदि रथी रोगी हो जाए, रथ के कील-कांटों, पहियों और पुर्जों में कोई खोट आ जाए अथवा सारथी

ही घोड़ों या इन्द्रियों का नियन्त्रण न करे तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी, परन्तु सब को व्यवस्थित सुसंचालित कर ही यह संसार-यात्रा सफल हो सकती है ।

आचार्य का उद्‌बोधन

आचार्य से मांगे तीनों वर पहले पिता, स्वस्थचित्त हो जाएं, दूसरे भौतिक सुखों के स्थान पर आध्यात्मिक सुख को स्वर्ग को पिता प्राप्त कर सकते हैं– वह स्वर्ग्य अग्नि की उपासना कर सकते हैं और तीसरे मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं । आत्मा-परमात्मा अमर हैं, न उत्पन्न होते हैं, न मरते हैं। मानव-जीवन का लक्ष्य आत्मा-परमात्मा का तादात्म्य स्थापित करना है । यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अध्यात्म मार्ग का पथिक आगे बढ़ता है । उस में शरीर रथ है, आत्मा रथी है, शरीर साधन है, आत्मा इस साधन का उपयोग करने वाला है, शरीर भोग्य है, आत्मा भोक्ता है । परन्तु इन्द्रियों का नियन्त्रण भी सम्भव है। विषयों के प्रति प्रतिकूल दौड़ ही श्रेय मार्ग है । अध्यात्म का चिन्तन करने वाले श्रेय मार्ग के पथिक के लिए विषयों से इन्द्रियां दूर रह सकती हैं–'**इन्द्रियेभ्यः परा हि अर्थाः।** अर्थ–अर्थात् संसार के विषयों से मन दूर रह सकता है। **अर्थेभ्यश्च परं मनः**–मन की चपलता से मन दूर रह सकता है–**मनसस्तु परा बुद्धिः**। बुद्धि से आत्मा बहुत दूर हो सकता है। **बुद्धेः आत्मा महान् परः** । बाहर की यात्रा से संसार की उपलब्धियाँ मिलती हैं । यह प्रेय मार्ग है । अन्दर की यात्रा में भगवान् मिलते हैं । यही श्रेय मार्ग है । अध्यात्म मार्ग के पथिक अपनी इन्द्रियां मन के अधीन, अपना मन बुद्धि के अधीन और अपनी बुद्धि आत्मा के अधीन और आत्मा को परमात्मा के अधीन छोड़ दें ।

मानव जाति का नचिकेता के माध्यम से उद्‌बोधन करते हुए यमाचार्य कहते हैं–''अध्यात्म का मार्ग ही सच्चा मार्ग है, परन्तु यह मार्ग सही होता हुआ भी कठिन है, यह मार्ग छुरे की तेज धार पर चलने के समान है । वह प्रेरणा देते हुए कहते हैं–''उठो, जागो, श्रेष्ठ जनों की संगति कर उद्‌बुद्ध हो जाओ। प्रेरणा का यह मन्त्र इस प्रकार है–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

१।३।१४।–६८

इस मार्ग पर चल कर ही व्यक्ति शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, अविनाशी, रसहीन, गन्धहीन, अनादि, अनन्त, महत्तत्त्व से परे

सत्यस्वरूप परमात्मा को सच्चे आत्मतत्त्व को जान कर मृत्यु के मुख से छूट जाता है । प्रासंगिक मन्त्र इस प्रकार है–

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥
१।३।१५–६९

बुद्धिमान् व्यक्ति यमाचार्य द्वारा प्रस्तुत नाचिकेत उपाख्यान को ब्रह्मलोक एवम् उसे चाहने वाले ब्रह्मज्ञानियों के विषय को भली प्रकार समझ सकता है ।

यह आत्मदर्शन कैसे हो सकता है ?

यमाचार्य नचिकेता को समझाते हैं–भगवान् ने मानव की इन्द्रियां बहिर्मुखी बनाई हैं, फलतः वह बाहर की ओर देखता है, अन्तरात्मा की ओर नहीं देखता । अमर पद की आकांक्षा करने वाला धीर व्यक्ति ही अपनी आखें बाह्य विषयों से हटा कर अन्तर्यामी आत्मा को देख पाता है । बाल बुद्धि मानव बाह्य सांसारिक भोगों में फंसे रहते हैं, फलतः वे सर्वत्र फैले हुए मृत्यु के बन्धन के शिकार हो जाते हैं, किन्तु धीर पुरुष, नित्य अमर पद को जान कर इस संसार के अनित्य भोगों में नहीं फंसते । (**धीराः अमृतत्वं विदित्वा अध्रुवेषु ध्रुवं न प्रार्थयन्ते।**) हमारी बाह्य इन्द्रियां हमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा स्त्री प्रसंग जन्य भोगों की ओर खींचती हैं, (**रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शान् च मैथुनान्।**) परन्तु ये तो बाहरी खोल मात्र हैं, उनके भीतर से झांकने वाला तत्त्व न हो तो कौन देखे, कौन सुने, कौन सूंघे, हमारी इन्द्रियों के पीछे जो बैठा है, अन्त में वही देखता, सुनता और सूंघता है, वही सब ज्ञान ग्रहण करता है । (**एतद् एव विजानाति**) वह यह भी जानता है कि इस संसार में कुछ नहीं रखा । (**किम् अत्र परिशिष्यते।**) यमाचार्य कहते हैं–हे नचिकेता, तुमने पूछा था कि मृत्यु के बाद क्या शेष रह जाता है? (**या इयं प्रेते विचिकित्सा**) उसका यही उत्तर दिया जा सकता है कि जिससे आंखें देखती हैं, जिसके बिना नहीं देख सकतीं, जिससे कान सुनते हैं, जिसके बिना कान सुन नहीं सकते हैं, वही मृत्यु के बाद शेष रह जाता है। इतना ही नहीं हम रात को सपने देखते हैं, दिन को जागते हुए बहुत कुछ देखते हैं–स्वप्न के जागने के अन्त में–न स्वप्न बचता है और न जागरण शेष रहता है । दोनों अवस्थाओं के दृश्य आत्मा देखता है, वही स्वप्न और जागरण असत्य हो जाते हैं, परन्तु इन दोनों के मध्य रहने वाला आत्मा ही सत्य बना रहता है।

(स्वप्नान्तं जागरितान्तं च उभौ येन अनुपश्यति ।) इस विभु आत्मा को जानकर धीर मानव शरीर का वियोग होने पर दु:खी नहीं होता, मृत्यु उसे दु:खदायी नहीं होती । **(महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा धीरः न शोचति।)**

जो मानव इस कर्मफलभोक्ता और प्राणादि को धारण करने वाले आत्मा को उसके समीप रहने वाले आत्मा को उसके समीपता से जानता है, उससे यह छुपा नहीं रहता कि यह तत्त्व वही है, जिसके बारे में तुमने पूछा था । यमाचार्य बतलाते हैं कि जो मोक्ष चाहने वाला अपने पहले तप से उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ एवं जल आदि पांच महाभूतों से पहले अवस्थित सब प्राणियों की हृदय रूपी गुफा में अवस्थित परमात्मा को देखता है, वही उस ब्रह्म को देखता है, निश्चय से वही ब्रह्म है। यमाचार्य कहते हैं–वह देवतामयी परमात्मशक्ति मातृतुल्या है । वह कभी खण्डित नहीं हो सकती, नष्ट नहीं हो सकती, वह नित्य है । सब जीवों में व्यक्त और अन्त:करण में अवस्थित वह शक्ति अदिति है । उसे प्राणायाम से अनुभव किया जा सकता है । वह बुद्धि रूपी गुफा में प्रविष्ट होकर निवास करती है । और उसे पंच महाभूतों से ही जाना जा सकता है । वही है, वह परमात्म शक्ति जिसके विषय में तुमने जिज्ञासा प्रकट की थी ।

आचार्य नचिकेता को आगे कहते हैं 'जिस प्रकार अरणियों में अग्नि छिपी होती है, दीखती नहीं, उसे प्राप्त करने के लिए अरणियों का रगड़ना जरूरी है, इसी प्रकार जैसे शिशु के जन्म पूर्व गर्भिणी स्त्री को बड़ी सावधानता से अपने गर्भ की रक्षा करनी होती है, इसी प्रकार परम तत्त्वों का साधक गहन चिन्तन और मनन रूपी मन्थन-आलोडन से परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है ।' आचार्य समझाते हैं कि भगवान् के दर्शन करने हों तो इन शारीरिक आंखों से नहीं प्रत्युत मन से उसके दर्शन हो सकते हैं **(मनसा एव इदम् आप्तव्यम्)** सृष्टि में परमात्मा के दर्शन उसी समय हो सकते हैं, जब नानात्व अनेकता की जगह एकता के दर्शन हों ।

मानव हृदय में प्रतिष्ठित परमात्मा

योगदर्शन में परमात्मा को पुरुष विशेष कहा गया है–**क्लेश-कर्म-विपाक आशयैः अपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः।** यमाचार्य ने नचिकेता को समझाया–''वह अङ्गुष्ठ मात्र परमात्मा–भूत तथा भविष्य का नियामक है, संसार के हर पदार्थ एवं हर वस्तु का

वह स्वामी है, उसे भली प्रकार जानकर कोई किसी से घृणा नहीं कर सकता । यह वही परम तत्त्व है, जिसके बारे में तू ने जिज्ञासा प्रकट की थी।'' यमाचार्य ने स्पष्ट कर कहा–''आत्मा में विद्यमान अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष ऐसी दिव्य ज्योति है, जिस में धूएं का लेश मात्र भी नहीं। वह भूत-भविष्य का स्वामी है, वही आज है, वही कल होगा, वह सनातन है। हे नचिकेता, यही वह ब्रह्म है, जिसके बारे में तू ने पूछा था । सम्बद्ध दोनों मन्त्र इस प्रकार हैं–

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूत-भव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।। एतद्वै तत्।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ।। एतद्वै तत्।
२।४।१३।८३,८४

यमाचार्य शिष्य को सत्यपरामर्श देते हैं जिस प्रकार ऊंचे नीचे विषम स्थलों में बरसा हुआ जल निम्न पर्वतों की नाना दिशाओं में बह जाता है, जिस प्रकार शुद्ध जल शुद्ध जल में मिला दिया जाये तो शुद्ध जल बना रहता है और अशुद्ध जल में मिला दिया जाए तो अशुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार ज्ञानवान् मुनि की आत्मा ब्रह्म से मिल कर उसी प्रकार पवित्र और ज्ञान स्वरूप हो जाती है ।

ब्रह्मतत्त्व की खोज

ब्रह्म या परमात्मतत्त्व दुर्बोध है, फलतः अन्य प्रकार से उसका विवेचन करते हुए यमाचार्य वर्णन करते हैं–हमारा शरीर ग्यारह दरवाजों वाला एक नगर है । हे नचिकेता–ये ग्यारह मार्ग ये हैं–दो आंखें, दो कान, दो नासिकाएं, एक मुख, एक तालु, एक नाभि, दो निम्न बाह्य द्वार और एक सिर में प्रतिष्ठित गुप्त द्वार-ब्रह्मरन्ध्र कुल ग्यारह द्वार हैं। नित्य विज्ञान स्वरूप अजन्मा आत्मा का पुर या नगर ग्यारह द्वार वाला है । उस आत्मा का ध्यान-अनुष्ठान करने पर मनुष्य कभी शोक से ग्रस्त नहीं होता, फलतः वह शरीर के रहते हुए भी सब प्रकार के कर्म-वन्धनों से मुक्त हो जाता है । यह वही परमतत्त्व है जिसके विषय में तूने पूछा था । मन्त्र इस प्रकार है–

पुरम् एकादशद्वारम् अजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते ।। एतद्वै तत्।
२।२।१।८७

यमाचार्य कहते हैं–''यह आत्मा केवल एक ही शरीर रूपी पुर में रहने वाला नहीं है, प्रत्युत अनेक पुरों में रहता है, यह जीवात्मा

हंस है, वसु है, होता है, अतिथि है । शुद्ध, पवित्र, धवल हंस रूप जीव शुद्ध ब्रह्म में निवास करता है । **(हंसः शुचिषद्)** अन्तरिक्ष में निवास करने वाले वसु के समान वसु रूप जीव हृदय रूपी अन्तरिक्ष में निवास करता है । **(वसुः अन्तरिक्षसद्)** यज्ञ की वेदी पर बैठे हुए होता के समान होता रूप यह जीव तीनों अग्नियों को अपने अन्दर प्रदीप्त करता है । **(होता वेदिषद्)** अतिथि जिस प्रकार गृहस्थी के घर दुरोण को अपना मानकर नहीं बैठता । जीवन की यात्रा का क्रम हंस, वसु, होता और अतिथि का है । हंस सरलता, शुद्धता और शुचि का प्रतिनिधि है इसीलिए उसे शुचिषद् कहा । जीवन की प्रथम अवस्था ब्रह्मचर्य आश्रम की सूचना देती है, उस समय बालक हंस की तरह सरल, शुद्ध और शुचि होता है, यमाचार्य इस अवस्था को नृषद् कहते हैं, उसमें मानव नर बनने की प्रक्रिया में होता है । जीवन-यात्रा का दूसरा पड़ाव वसु का है । वसु का अर्थ बसना या बसाना होता है । पच्चीस वर्ष का ब्रह्मचारी भी वसु कहलाता है । बसना या बसाना गृहस्थाश्रम में सम्भव है, उसे 'वसु' इसलिए कहते हैं, वह स्वयं बसता है, दूसरों को बसाता है । जीवन-यात्रा की तीसरी स्थिति होता की है, उस स्थिति में अपेक्षा है कि मानव समाज के लिए स्वयं को होम कर दे । यही जीवन का 'यज्ञमय' होना है । वस्तुतः वह जीवन का वानप्रस्थ आश्रम है । जीवन-यात्रा की चौथी स्थिति अतिथि के तुल्य है । उस स्थिति में मानव अतिथि के समान हो जाता है, वस्तुतः वह संन्यास आश्रम में संसार में अतिथि के समान हो जाता है । जीवन के इन चार आश्रमों को यमाचार्य नर-देह, वर-देह, ऋत-देह और व्योम-देह की संज्ञा देते हैं । इस प्रकार मानव ज्ञानात्मा से महानात्मा और शान्तात्मा हो जाता है । सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है—

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसद् अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥
२।२।२।८८

आचार्य बतलाते हैं आत्मा अङ्गुष्ठ मात्र है, वह शरीर के मध्य भाग में अवस्थित रह कर प्राण वायु को ऊपर की ओर ले जाता है, मध्य भाग के नीचे विद्यमान अपान वायु को नीचे की ओर ढकेलता है, हृदय-पुण्डरीक की चक्षु आदि सभी इन्द्रियां उपासना करती हैं, मानव-जीवन प्राण शक्ति और अपान शक्ति से बंधा हुआ है । इन दोनों शक्तियों के संचय-अपचय से मानवीय जीवन शक्ति बनी रहती है, सभी इन्द्रियों में यह प्रक्रिया प्रचलित रहती है इन दोनों का संचालन अङ्गुष्ठमात्र पुरुष करता है ।

यमाचार्य बतलाते हैं जब शरीर से देही जीवात्मा निकलने लगता है, तब इस शरीर में स्थित स्वामी आत्मा के बन्धन से छूट जाने पर इस शरीर में क्या रह जाता है? अर्थात् कुछ शेष नहीं रहता । जीवात्मा के निकल जाने पर यह शरीर मिट्टी हो जाता है । कोई भी मानव न तो प्राण से जीवित रहता है और न अपान से, बल्कि वे तो दोनों ही जिस में ये दोनों आश्रित रहते हैं, ऐसे किसी अन्य से ही जीवित रहते हैं ।

यमाचार्य ने पहले वचन दिया था कि मैं तुझे अत्यन्त गुप्त रहस्य से परिपूर्ण-ब्रह्म के बारे में मृत्यु के बाद आत्मा की क्या गति होती है-उस रहस्य के बारे में अब बतला दूंगा । आचार्य गुह्य ब्रह्मोपदेश देते हुए कहते हैं-प्राणादि के सो जाने पर प्रलय काल में सारी सृष्टि के सो जाने पर जो यह पुरुष, जो वस्तु जैसी होनी चाहिए । उसका वैसा ही निर्माण करता रहता है, वही शुद्ध स्वरूप वही ब्रह्म अमृत कहा जाता है, उसमें सम्पूर्ण लोक आश्रित हैं कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता । हे नचिकेता, वही वह ब्रह्म परमेश्वर है, जिसके बारे में तुमने पूछा था । यह मन्त्र इस प्रकार है-

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥

एतद्वै तत्।२।२।८।-९४

अग्नि और वायु के दृष्टान्त से परमेश्वर की व्यापकता का वर्णन करते हुए कहा गया है । जैसे एक ही अग्नि समस्त भूतों में प्रविष्ट होकर उनके समान प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह अन्तर्यामी भिन्न-भिन्न प्राणियों में उनके अनुरूप नाना रूपों में दीखता हुआ उनसे बाहर भी है । जैसे सारे विश्व में एक वायु नाना रूपों में प्रकट होता है। उसी प्रकार वह अन्तर्यामी नाना रूपों में उन्हीं के रूप वाला दीखता हुआ उनसे बाहर भी है । आचार्य आगे बतलाते हैं जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोक का चक्षु होते हुए भी नेत्र सम्बन्धी बाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा-परमेश्वर जगत् के दुःखों से लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह सब में रहता हुआ भी सब से पृथक् है।

आचार्य शिष्य को सीख देते हैं-सब को अपने अधीन रखने वाला सब भूतों का अन्तरात्मा अद्वितीय, एक प्रकृति से नाना रूपों का निर्माण करने वाला, उस अपनी आत्मा में अवस्थित परमात्मा को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते हैं । उन्हीं को अटल परम सुख मिलता है, दूसरों को नहीं । इसी प्रकार सुख-शान्ति के परम साधन परमात्मा का वर्णन करते हुए कहा गया है । वह अनित्य पदार्थों में नित्य और चेतनों

का चेतन है, वह अकेला ही अनेक की कामनाएं पूर्ण करता है, अपनी आत्मा में अवस्थित परमात्मा को जो देखते हैं । ऐसे विवेकी धीर पुरुषों को अटल शान्ति सुख की प्राप्ति होती है, दूसरों को नहीं ।

ज्ञानी पुरुष उस परम सुखस्वरूप परमात्मा को अनिर्वाच्य-अनिर्वचनीय समझते हैं । जिज्ञासा है कि क्या उसका स्वरूप जाना जा सकता है, क्या उसका साक्षात्कार सम्भव है? यमाचार्य इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए बतलाते हैं–वह भासता है और विशेष रूप से दिखाई देता है । उस सर्वप्रकाश का अप्रकाश्य रूप वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं । उस आत्मलोक में सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते, न यह विद्युत् ही जगमगाती है, फिर उस भौतिक अग्नि की तो बात ही क्या है । उसके प्रकाश से ही ये सब (सूर्यादि) प्रकाशित होते हैं और उसी की ज्योति से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है । **(त एवं भान्तम् अनुभाति सर्वमः, तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति।)**

नचिकेता सोचता है– सृष्टि में परमात्मा नहीं दीखता न अनुभव में आता है ? इस पर यमाचार्य समझाते हैं । यह संसार उल्टा है, इसलिए परमात्मा नहीं दीखता, अनुभव में नहीं आता । जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं– ऐसा यह सनातन अनादि अश्वत्थ वृक्ष है । आचार्य कहते हैं सृष्टि का मूल तत्त्व भगवान् है, परमेश्वर है, वह ही शुद्धतम है, वही ब्रह्म है, वही अमृत है । इस चराचर जगत् के सब लोक-लोकान्तर उसी के सहारे टिके हुए हैं। उसी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित है, उसे कोई पार नहीं कर सकता, वही अज है, उसके आगे कुछ नहीं । हे नचिकेता यही परमेश्वर है, जिसके विषय में तुमने पूछा था । प्रासंगिक मन्त्र इस प्रकार है–

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥

एतद्वै तत्।२।३।१।१०२

आचार्य बतलाते हैं– 'यह जो कुछ सारा जगत् है, वह प्राण ब्रह्म में उदित होकर उसी से चेष्टा कर रहा है । **(प्राणे एजति निःसतृम्)** यही प्राणशक्ति जगत् को जीवन प्रदान कर रही है। यह उसी प्रकार है जैसे कोई सामने वज्र लेकर खड़ा हो, थोड़ा भी रुके तो वज्रपात हुआ, मानो वज्रपात के भय से संसार में गति बनी रहती है **(महद् भयं वज्रमुद्यतम्)**। जो उसे जानते हैं, वे निर्भय हो जाते हैं **(ये एतद् विदुः अमृताः ते भवन्ति)** । उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, क्योंकि

कष्ट तो तब हो जब वे भगवान् के विधान का उल्लंघन करें । इसी प्रकार उसके नियन्त्रण के भय से अग्नि तपती है (**भयाद् अग्निः तपति**) उसी के भय से सूर्य तपता है (**भयात् तपति सूर्यः**)। अग्नि, सूर्य, इन्द्र और वायु के अतिरिक्त पांचवाँ–मृत्यु भी उसी के भय से भागा फिरता है ।

जन्म-जन्मान्तर का चक्कर कैसे छूटे ?

आचार्य बतलाते हैं–अगर तू इस भगवान् को यहां इस जन्म में जानने में सफल हो गया तो फिर इस सृष्टि के रहते तेरा जन्म नहीं होगा और यदि नहीं जान पाया तो इस जन्म-मरणशील लोकों में शरीर धारण करता रहेगा । (**इह चेत् अशकत् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्त्रसः। ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।।**)

विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं जिस प्रकार दर्पण या आईने में चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार निर्मल बुद्धि में आत्मा की स्पष्ट अनुभूति-दर्शन होते हैं। (**यथा आदर्शे तथा आत्मनि**) भगवान् के दर्शन का दूसरा ठिकाना पितृलोक, पितृलोक का तात्पर्य बड़े-बूढ़ों और बुजुर्गों की दृष्टि अपनाना है । समाज के प्रौढ़-बुजुर्ग अपने अनुभव से परमात्मा की चर्चा करते हैं, उनकी चर्चा सुन कर भगवान् के विषय में आस्था सुदृढ़ होती है, परन्तु वह लगभग वैसी ही होती है, जैसे कोई स्वप्न में देखी बात की चर्चा करे । (**यथा स्वप्ने तथा पितृलोके**) भगवान् के दर्शन का तीसरा स्थान गन्धर्व लोक है, जैसे जल में छवि थोड़ी देर तक दिखाई देती है वैसी ही अनुभूति छोटे या बड़े (**गन्धर्व-गां धारयतीति इति गन्धर्वः**) ज्ञानी लोगों के सम्पर्क में आने से होती है (**यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके**) भगवान् के दर्शन का चौथा ठिकाना ब्रह्मलोक है । ब्रह्मलोक का अर्थ है ध्यानी पुरुषों की सहायता से ब्रह्मयोग के माध्यम से ब्रह्म के दर्शन) ये दर्शन उसी तरह से होते हैं जैसे व्यक्ति छाया और धूप को पृथक्-पृथक् देख लेता है । (**छाया आतपयोः इव ब्रह्मलोके**)

आत्मज्ञान का प्रयोजन

यमाचार्य बतलाते हैं– इन्द्रियों तथा आत्मा में भिन्नता या पृथक्ता यह है कि इन्द्रियों की शक्ति पैदा होती है और फिर वह विनष्ट हो जाती है । (**इन्द्रियाणां पृथक् भावम् उदय-अस्तमयौ च यत्** ।) परन्तु आत्मा का न उदय है और न अस्त । इस प्रकार

इन्द्रियों का स्रोत पृथक् है और आत्मा का स्रोत पृथक् । यह जान लेने पर धीर बुद्धिमान् लोक-शोक नहीं करते (**पृथग् उत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति।**)

जब मनुष्य समझ लेता है कि इन्द्रियां पृथक् हैं और आत्मा पृथक् है, तब उसे समझ आ जाती है कि इन्द्रियों का दुःख मैं अपने ऊपर आरोपित कर रहा हूं, यह दुःख आत्मा का नहीं, इसी के साथ जिस आत्मा का पृथक्त्व इन्द्रियों से दिखलाया गया है, वह कहीं बाहर है, यह नहीं समझना चाहिए । आचार्य समझाते हुए कहते हैं– इन्द्रियों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से महत्तत्व बढ़ कर है तथा महत्तत्व से अव्यक्त उत्तम है । (**इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् । सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥**)

आचार्य शिक्षा देते हैं—अव्यक्त प्रकृति से भी पुरुष श्रेष्ठ है और वह अव्यक्त भगवान् सर्वव्यापक, अनिवर्चनीय परम पुरुष उत्तम भगवान् है (**अव्यक्तात् पुरुषः परः व्यापकः अलिङ्गः एव च ।**) उसी परम पुरुष को जानकर मनुष्य मुक्त होता है और अमरत्व प्राप्त कर लेता है (**यं ज्ञात्वा जन्तुः अमृतत्वं च गच्छति ।**)

स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि जिसका कोई ज्ञेय बाह्य चिह्न नहीं है, उस परम आत्मतत्त्व के दर्शन कैसे हो सकते हैं । जिज्ञासा का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं । इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता (**न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य**) उसे कोई आंख से नहीं देख सकता (**न चक्षुषा पश्यति कश्चन एनम्**) यह परम तत्त्व तो मन का नियन्त्रण करने वाला हृदयस्थिता बुद्धि द्वारा मनन रूप सम्यग्दर्शन से ही जाना जा सकता है और जो उसे ब्रह्मरूप से जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं । (**हृदा मनीषा मनसा अभिक्लृप्ताः, ये एतद् विदुः अमृताः ते भवन्ति।**)

परमपद की प्राप्ति

आचार्य बतलाते हैं जिस समय पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के सहित (आत्मा) में स्थित हो जाती हैं– जब बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, वह अवस्था परम गति कहलाती है । (**यदा पञ्च अवतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टति ताम् आहुः परमां गतिम् ।**)

आचार्य का निष्कर्ष है—इस प्रकार मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का एक साथ मिलकर चल पड़ना ही योग है । (**तां योगम् इति मन्यन्ते स्थिराम् इन्द्रियधारणाम् ।**) जब इस प्रकर योगमार्ग पर चल पड़ते

हैं और पूरी तत्परता से योग-यात्रा चलती है **(अप्रमत्तः तदा भवति)** उस स्थिति में उतराव-चढ़ाव भी आते हैं, योग उदय (प्रभव) और अस्त (अप्यय) स्वभाव वाला है इस मार्ग पर लगातार गति करना और सावधान होकर आगे बढ़ना ही योग-मार्ग है ।

शिष्य साधक को चेतावनी देते हुए गुरु कहते हैं कि वह प्रभु न तो वाणी से, न मन से और न ही नेत्रों से प्राप्त किया जा सकता है **(नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।)** वह है यह मान कर ही उसे पाया जा सकता है **(अस्ति इति ब्रुवतः अन्यत्र कथं तद् उपलभ्यते।)**

इस प्रकार 'प्रभु है' इस प्रकार उसे माना जा सकता है । यह निष्कर्ष स्वीकार कर चला जाए अथवा तात्त्विक विवेचना या युक्ति का दूसरा मार्ग है । युक्ति से प्रभु का वर्णन करने वालों की अपेक्षा अपने अन्तःकरण से प्रभु के अस्तित्व की स्वीकृति वाणी और मन को आह्लादित करती है। **(अस्ति इति एव उपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति।)**

सारी चर्चा का निष्कर्ष है, जब साधक हृदय में अवस्थित सभी कामनाओं से छूट जाता है, तब वह मरणधर्मा मानव अमर हो जाता है और ब्रह्म को पा लेता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा ये अस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतः भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते।।

आचार्य स्पष्ट करते हैं, कि जब मनुष्य के हृदय में अवस्थित वासनाओं-इच्छाओं की सब गांठें छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, तब यह मरणधर्मा मानव अमर हो जाता है, यही शास्त्रों का उपदेश है ।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।।

मनुष्य को संसार की लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा आदि अनेक कामनाएँ पथभ्रष्ट कर देती हैं । उनके जाल में फंसा वह नाना दुःख भोगता है, केवल संयमी जीवन से मानव सब कामनाओं का नियन्त्रण कर सकता है । आचार्य का सत्परामर्श है कि हृदय की एक-सौ-एक नाड़ियां हैं, उनमें एक मूर्धा (कपाल) को चली जाती है, उसे ही सुषुम्णा कहते हैं, शेष सौ नाड़ियां रह जाती हैं । अन्त समय में इस सुषुम्णा नाड़ी द्वारा गमन करता हुआ आत्मा अमर हो जाता है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः तासां मूर्धानं अभिनिःसृता एका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।

घट-घट में बसे भगवान् की प्राप्ति

भगवान् को पाने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना चाहिए । बाहर तो संसार बिखरा पड़ा है, अपने आत्मा के भीतर ही वह पुरुष ब्रह्म बैठा हुआ है । उसे योगदर्शन में 'पुरुषविशेष' कहा गया है– **सः पुरुषविशेषः ईश्वरः।** यमाचार्य आत्मा के भीतर अङ्गुष्ठमात्र प्रत्येक जीव के हृदय में सन्निविष्ट ब्रह्म का वर्णन करते हैं, उसे उसी तरह से पाया जा सकता है । जैसे मूंज में दबी सींक खींच कर निकाली जा सकती है । लक्ष्यप्राप्ति के लिए जल्दी से नहीं धैर्य से सतत प्रयत्न से ही सफलता मिल सकती है । आचार्य कहते हैं– हे नचिकेता, वह ब्रह्म शुद्ध है, वही अमृत है, वह शुक्र है, वही अमृत है । यह समझ लो तो तुम्हें लक्ष्य प्राप्ति में अपने सच्चे प्रयत्नों से सफलता मिलेगी, उस स्थिति में आत्मा जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाएगा । उपसंहार मन्त्र इस प्रकार है–

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः। तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति।।२।३।१७।११८

साधक के लिए अपेक्षित है कि पुरुष विशेष ईश्वर तक पहुंचने के लिए वह अपनी भौतिक कामनाएं छोड़-प्रेय मार्ग को तिलांजलि देकर अभ्युदय के लिए उपयुक्त श्रेय मार्ग का अवलम्बन करे ।

–अभ्युदय, बी-२२, गुलमोहर पार्क,

नई दिल्ली-११००४६

बहुत दिनों बाद प्रकाशित पुस्तकें

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार : लेखक–पं॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार । इस ग्रन्थ में वैदिक विचारधारा को विज्ञान की कसौटी पर परखने का प्रयत्न किया गया है, ताकि हमारी नई पीढ़ी जिन मान्यताओं को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ती जा रही है, उन पर नई दृष्टि से सोचें । मूल्य : रु० १५०-००

षड्दर्शनम् : लेखक–स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती । वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है । वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है। मूल्य : रु० १५०-००

सामाजिक पद्धतियाँ : लेखक–महाशय मदनजित् आर्य, सन्ध्या, हवन-मन्त्र, यज्ञोपवीत, प्रथम वस्त्र-परिधान, जन्म-दिवस, विवाह-पद्धति, सगाई-पद्धति, सेहरा बन्दी, शैंत, मिलनी गार्हपत्याग्नि-पद्धति, व्यापार-सूत्र, दुकान, मुहूर्त्त, अन्त्येष्टि क्रिया आदि आवश्यक सामाजिक पद्धतियों के संग्रह । मूल्य : रु॰ १२-००

जीवात्मा : लेखक-पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय, जीवात्मा के लक्षण, शरीर और शरीरी, अभौतिक आत्मा, पुनर्जन्म, मुक्ति, जीव-ब्रह्म-सम्बन्ध आदि अनेक विषयों पर महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह । मूल्य : रु॰ ४०-००

ऋषि दयानन्द का स्वराज्य-चिन्तन

उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भारत पर भारतवासियों का स्वत्व रहे, इस सत्य की निर्भीकतापूर्वक घोषणा की । होमरूल आन्दोलन की प्रवर्त्तक श्रीमती एनी बेसेन्ट ने इसी तथ्य का उद्घाटन करते हुए कहा था– Dayanand was first to proclaim India for Indians. विचार करने की बात है कि स्वामी दयानन्द ने जब १८७४-७५ में स्वदेशी राज्य की बात की और आर्यावर्त्त की पराधीनता पर खेद प्रकट करते हुए आर्यों (भारतवासियों के अखण्ड चक्रवर्ती, सार्वभौम साम्राज्य के लिए परमात्मा से कामना की उस समय तक भारत के सार्वजनिक क्षितिज पर स्वराज्य या स्वतन्त्रता की कोई चर्चा ही नहीं थी । दादा भाई नौरोजी ने तो १९०६ में पहली बार 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया था और उसके दस वर्ष बाद लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य को भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया; किन्तु कांग्रेस ने देश की पूर्ण स्वतन्त्रता को लक्ष्य बनाते हुए लाहौर कांग्रेस (१९२९) में ही अपना प्रस्ताव स्वीकार किया था । स्वामी दयानन्द ने तो सत्यार्थप्रकाश की रचना करते समय ही यह स्पष्ट घोषित कर दिया था कि ''जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत मतान्तर के आग्रह से रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।''

यह लिखते समय स्वामी जी ने पराधीनता के कारणों का भी विश्लेषण किया और बताया कि '' अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, चक्रवर्ती, स्वाधीन, स्वतन्त्र, निर्भय राज्य नहीं है ।'' पाठक जरा महाराज के शब्द-चयन पर विचार करें । वे चाहते थे भारत में भारतीयों का राज्य जब हो तो वह अखण्ड हो, स्वाधीन हो, स्वतन्त्र हो तथा निर्भीक हो। स्वामी जी ने यह भी अनुभव किया था कि कहने को तो अंग्रेजी राज्य (British India) में भी यत्र तत्र हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि देशी राजाओं का राज्य है, किन्तु ये राज्य कैसे हैं । सुनिये- ''जो कुछ हैं सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं ।'' तब स्वराज्य कैसे प्राप्त होगा । 'ऋषि की सम्मति में इसके लिए देशवासियों में सच्ची राष्ट्रीय

एकता भरनी होगी ।' भाषा, शिक्षा, व्यवहार और आचरण में जब तक विरोधी भाव दूर नहीं होंगे स्वराज्य स्वप्नवत् ही रहेगा । इसको कठिन बताते हुए वे पुन: लिखते हैं -''परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है । बिना इसके छूटे परस्पर का उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना दुष्कर है।''

अब देखना यह है कि क्या देश की पराधीनता पर दु:ख व्यक्त करने और भारत को स्वतन्त्र देखने की कामना के विचार स्वामी दयानन्द के जीवन में कब उद्भूत हुए । युवा मूलशंकर ने जब २१ वर्ष की युवावस्था में स्वगृह का त्याग किया था उस समय उसके मानस में सच्चे शिव का दर्शन (मूर्ति-पूजा से हुई विरक्ति के कारण) तथा मृत्यु के रहस्य को जान उस पर विजय प्राप्त करने के भाव ही प्रमुख रूप से थे । जब उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण किया और कुछ काल पश्चात् ही संन्यास ले लिया तो उन्हें योगसाधना में प्रवृत्त होना पड़ा । एतदर्थ वे सच्चे योगियों की तलाश में सर्वप्रथम अपने ही प्रान्त गुजरात और तदुपरान्त आबू पर्वत, हिमालय की उपत्यका तथा नर्मदा के तटवर्ती प्रान्तों में वर्षों तक घूमते रहे । साथ ही शास्त्रों का अभ्यास करने का क्रम भी जारी रहा । इस अवधि में दयानन्द का जीवन-चक्र इन दो धुरियों के इदगिर्द ही घूम रहा था । १८५६-५७ के वर्षों में वे देश और दुनिया से कटे हुए सर्वथा असम्पृक्त से नर्मदा के किनारे के गहन आरण्यक अंचलों में विचरण कर रहे थे । उन दिनों की सैनिक और राजनैतिक हलचल की खबर उन्हें थी या नहीं, इसके बारे में प्रमाण पूर्वक कुछ भी कहना कठिन है । किन्तु इतना सत्य है कि १८६० में जब वे स्वामी विरजानन्द की पाठशाला में प्रविष्ट होते हैं तब उनमें संस्कृत विद्या में प्रवीण होने तथा व्याकरणादि शास्त्रों में पटुता प्राप्त करने की ही उत्कट इच्छा थी ।

यहाँ एक बात अवश्य कहनी है । स्वामी दयानन्द के शास्त्रगुरु दण्डी विरजानन्द के वैचारिक पक्ष पर हम लोगों का ध्यान बहुत कम गया है । पं० लेखराम, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आदि उनके जीवनी लेखकों ने उनके अपार शास्त्र-ज्ञान, आर्य शास्त्रों के उद्धार हेतु किये गये प्रयत्नों आदि की चर्चा तो की है परन्तु स्वामी वेदानन्द तीर्थ तथा कोटा के प्रो० भीमसेन शास्त्री द्वारा लिखित दण्डी जी के जीवनचरित्रों में यह तथ्य भी उभर कर सामने आया है कि इस अन्ध संन्यासी के हृदय में देश की पराधीनता को लेकर अपार पीड़ा थी । वह चाहता था कि किसी न किसी प्रकार से देश स्वाधीन हो तथा विदेशियों के क्रूर पाश से उसे मुक्ति मिले । दण्डी जी के एक शिष्य नवनीत चौबे

ने एक कवित्त छन्द में प्रज्ञाचक्षु गुरु के हृदय में विदेशी शासन के प्रति आक्रोश के इसी उद्दीप्त भाव को यों प्रकट किया है–

उन्नत ललाट बल बहुल विशाल मुण्ड
अक्षमाल भाल भव्य चंदन त्रिपुण्डी ने ।
नवनीत प्यारे परपच्छ गिरि पच्छन पै
वज्राघात डिण्डिम नाम खलखण्डी ने ।
सम्प्रदायवाद वेद विहित विवर्जित पै
सासन विदेसिन को नासन प्रचण्डी ने
गोरे के अगारी उद्दण्ड भै उठाय दण्ड
चण्ड ह्वै प्रतिज्ञा करी प्रज्ञाचक्षु दण्डी ने ॥''

हम इस कवित्त का अर्थ करते समय देखें कि कवि ने किस प्रकार दण्डी जी के दिव्य शरीर तथा उनके प्रचण्ड व्यक्तित्व का सारगर्भित उल्लेख थोड़े से शब्दों में कर दिया है । नवनीत चौबे दण्डी जी के शिष्य होने के नाते उनकी शारीरिक विभूति को प्रत्यक्ष देखने वालों में थे । वे कहते हैं– ''उनका ऊंचा ललाट है, शरीर में प्रचण्ड शक्ति है, मुख विशाल है, गले में रुद्राक्ष की माला तथा मस्तक पर चन्दन का त्रिपुण्ड्र है । पाठक ध्यान रखें, दण्डी जी कोई आर्यसमाजी संन्यासी नहीं थे। परम्परागत साधुओं की भांति वे रुद्राक्ष मालाएँ धारण करते थे तथा शैव संन्यासियों की भांति मस्तक पर शैव सम्प्रदाय को अभीष्ट त्रिपुण्ड्र नामक तिलक भी धारण करते थे । स्वामी दयानन्द ने भी पर्याप्त समय तक रुद्राक्ष मालाएँ धारण की थीं । यह तो हुई दण्डी जी का बाह्य रूप । आगे कवि कहता है कि दण्डी जी की वज्र सदृश वाणी वैष्णवादि प्रतिपक्षी सम्प्रदायों पर उसी प्रकार प्रहार करती थीं जिस प्रकार देवराज इन्द्र का वज्र पक्षधारी पर्वतों पर प्रहार करता है । दण्डी जी ने वेद विवर्जित सम्प्रदायवाद को नष्ट करने के लिए घोर प्रयास किया । इसी प्रकार उन्होंने विदेशी शासन को नष्ट करने तथा उद्दण्ड गोरों का नाश करने के लिए अपने हाथ में दण्ड तो धारण किया ही, प्रचण्ड प्रतिज्ञा भी की ।''.

निश्चय ही उक्त काव्य में किञ्चित् अतिशयोक्ति है । दण्डी जी ने विदेशी शासन को नष्ट करने के लिए कोई प्रत्यक्ष उपाय न किये हों, अपने प्रिय शिष्य दयानन्द में उन्होंने स्वतन्त्रता की लौ अवश्य लगाई जो कालान्तर में उद्दीप्त होकर प्रचण्ड अग्नि बन गई । जीवन-चरित लेखकों का यह अनुमान ठीक है कि एकान्त के क्षणों में जब विरजानन्द और दयानन्द का वार्तालाप होता था तो उसमें सम्प्रदायवाद के विरुद्ध संघर्ष करने, अनार्ष ग्रन्थों का उन्मूलन करने, मूर्तिपूजादि कदाचारों का

विरोध करने जैसी बातों के साथ साथ विदेशी शासन को कैसे समाप्त किया जाये, जैसे सूत्र भी सम्मिलित रहे होंगे । परन्तु इसके लिए कोई लिखित प्रमाण नहीं हैं । इन गुरु शिष्यों के संवाद के समय कोई अन्य उपस्थित भी तो नहीं रहता था ।

स्वामी दयानन्द के आगे के दस वर्ष धर्मप्रचार तथा वेदविरुद्ध मतवाद के खण्डन को ही समर्पित रहे । वे हरिद्वार के कुम्भ के मेले में जाते हैं । पाखण्ड-खण्डनी पताका लहराते हैं । तत्पश्चात् गंगा के तटवर्ती प्रदेश का भ्रमण करते हुए सन्ध्या, गायत्री, अग्निहोत्र आदि सामान्य वेदोक्त धर्म पर आचरण करने का उपदेश देते हैं। फर्रुखाबाद, कानपुर, काशी आदि नगरों में पौराणिक विद्वानों से मूर्तिपूजा की वैदिकता पर शास्त्रार्थ भी करते हैं । अब तक उनमें जो विचार चल रहे हैं वे यही हैं कि किसी न किसी प्रकार से मूर्तिपूजादि अवैदिक अनुष्ठानों का चलन बंद हो तथा लोग वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम का पालन करें। दयानन्द की यह भी चेष्टा रही कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य में स्वामी विशुद्धानन्द जैसे आयु तथा अनुभव में उनसे भी वरिष्ठ संन्यासी उनका सहयोग करें । किन्तु मठों में रह कर लौकिक सुखों को भोगने वाले विशुद्धानन्दादि संन्यासियों को दयानन्द का यह कार्यक्रम भला कैसे स्वीकार होता ।

जब स्वामी दयानन्द भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता में आये तो १८७२ का दिसम्बर मास था । राजधानी में धर्मसुधार, शिक्षा, कुरीति निवारण तथा समाजोन्नति के अनेक कार्यक्रम जारी हो चुके थे और बंगाल के सार्वजनिक जीवन में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा भूदेव मुखोपाध्याय आदि अनेक लोग कार्यरत थे । दयानन्द सरस्वती प्रथम तो दूरस्थ गुजरात देश के थे, फिर बंग देश में वे अपने विचार सरल संस्कृत में ही व्यक्त करते थे । अभी तक उनका हिन्दी पर पर्याप्त अधिकार नहीं हो पाया था, तथापि उन्होंने बंगाल के इन सुधी नेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क किया और देश की दशा को सुधारने के लिए सम्मिलित प्रयास किये जाने पर बल दिया । देखा जाये तो दयानन्द का समाज और देश के प्रति इतिकर्त्तव्यता का भाव प्रथम बार कलकत्ता प्रवास में ही व्यक्त हुआ । इससे पूर्व तक वे मात्र धर्मप्रचारक ही थे।

आगे चलकर जब वे महाराष्ट्र में आये और बम्बई, सूरत, अहमदाबाद, राजकोट तथा अन्त में पूना जाने का उन्हें अवसर मिला तो वे बम्बई प्रान्त (उस समय महाराष्ट्र और गुजरात सम्मिलित थे और उन्हें बॉम्बे प्रेसिडेन्सी के नाम से पुकारा जाता था।) में काम करने वाले

मनीषियों के सम्पर्क में आये। इनमें प्रमुख थे–महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालराव हरि देशमुख, महादेव मोरेश्वर कुण्टे, ज्योतिराव फुले, रामकृष्ण भण्डारकर, विष्णु शास्त्री चिपलूणकर तथा भोलानाथ साराभाई आदि। इनमें से कुछ वे थे जो १८६७ में ब्रह्मसमाज के ही अनुकरण पर प्रार्थनासमाज की स्थापना कर देश और समाज के सुधार का यत्किञ्चित् कार्य कर रहे थे। इन महाराष्ट्रीय व्यक्तियों में रानडे, फुले, कुण्टे, देशमुख आदि स्वामी जी के समर्थक और सहयोगी रहे तो चिपलूणकर तथा साराभाई ने उनका विरोध किया। भण्डारकर ने तटस्थता दिखलाई।

१८७५ में आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् दयानन्द की वाणी में राष्ट्रीयता और स्वदेश भक्ति का स्वर निरन्तर प्रखर होता रहा और उन्होंने एक के बाद ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत किये जो देश को स्वराज्योन्मुख बनाने में सहायक बने। इस विवेचन को आगे बढ़ाने के पहले हम यह देखें कि क्या दयानन्द की यह राष्ट्रभावना किसी विदेशी स्रोत से आयातित थी। सामान्यतया आज का इतिहासकार हमें यही बताता है कि भारतवासियों में जो स्वाधीनता की चेतना जागी उसके पीछे पश्चिम में उत्पन्न प्रजातन्त्र के भाव तथा यूरोपीय देशों द्वारा पराधीनता से उन्मुक्त होने के प्रयत्न आदि कारण ही थे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति तथा उनसे उत्पन्न स्वतन्त्रता समानता तथा बन्धुत्व (Liberty, Equality, Fraternity) की भावना, रूसो तथा वाल्टेयर के विचार, उधर इंग्लैण्ड के हर्बट स्पैन्सर जॉन स्टुअर्ट मिल आदि के उदात्त भावों से प्रेरित होकर दयानन्द के परवर्ती नेताओं और मनीषियों ने चाहे देशभक्ति के भावों को ग्रहण किया हो, किन्तु अंग्रेजी भाषा से पूर्णतया अपरिचित तथा पश्चिमी देशों के इन सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों से प्रायः अनभिज्ञ दयानन्द की स्वराज्य भावना के प्रेरणा स्रोत तो वेद के वे सूक्त ही थे जिनमें मातृभूमि की वन्दना करते हुए धरती को माता तथा स्वयं को उसका पुत्र कहा गया है– माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। स्वराज्य की अर्चना के ऋग्वेदीय सूक्त दयानन्द को देश के प्रति समर्पित भाव से कार्य करने की प्रेरणा देते थे। उधर मनु याज्ञवल्क्य, शुक्र, चाणक्य और कामन्दक जैसे राजनीति शास्त्रवेत्ता तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के सूत्र संचालकों के विचार दयानन्द के राजनैतिक चिन्तन के स्रोत बने हुए थे।

जरा दयानन्द के समकालीन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के एतद् विषयक विचारों की समीक्षा करें। उनके पूर्ववर्ती सुधारक राजा राममोहन राय की दृष्टि में ब्रिटिश राज्य भारत के लिए ईश्वर प्रदत्त वरदान के

तुल्य था । इटली के सिसली और नेपल्स जैसे उपनिवेशों के स्वाधीन हो जाने पर जलपोत में ही हर्ष प्रकट करने वाले और अपने साथी यात्रियों को पार्टी देने वाले राजा राममोहनराय ने भारत के स्वतन्त्र होने की कभी कामना नहीं की । इसके विपरीत वे जीवन पर्यन्त अंग्रेजी राज्य के वरदानों का ही गुणगान करते रहे । उन्होंने ही तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट को प्रार्थना पत्र भेजकर अंग्रेजी शिक्षा को सुदृढ़ करने के लिए निवेदन किया तथा संस्कृत शिक्षा का उपहास किया । उन्हीं के अनुवर्ती केशवचन्द्र सेन ब्रिटिशों का गुणानुवाद करने में औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गये । किन्तु इनसे सर्वथा भिन्न हैं दयानन्द। वे अंग्रेज जाति की देशभक्ति, समय-पालन तथा स्वदेश में बनी वस्तुओं को अपनाने जैसे गुणों के प्रशंसक अवश्य हैं किन्तु उनके द्वारा भारत को पराधीन बनाने के दुष्कृत्य को वे भूलकर भी माफ नहीं कर सके। वार्तालाप के अनेक प्रसंगों में कहीं स्पष्ट रूप से, तो अन्यत्र व्यञ्जना का सहारा लेकर उन्होंने अंग्रेजों की इस साम्राज्य लालसा और भारत जैसे महादेश को गुलाम बनाए रखने की साजिश की भरपूर निन्दा की। कतिपय उदाहरण देखें- दानापुर (बिहार) में जोन्स नामक एक धनी अंग्रेज व्यापारी से वार्तालाप के प्रसंग में स्वामी जी ने कहा कि यदि भारतवासियों में एकता तथा सच्ची देशभक्ति के भाव उत्पन्न हो जावें तो विदेशी शासकों को अपना बोरिया बिस्तर उठा कर तुरन्त जाना पड़ेगा। पंजाब में किसी अंग्रेज अफसर से वार्तालाप करते हुए उन्होंने कहा कि पहले तो अंग्रेज लोग बड़ी जल्दी उठ कर भ्रमण के लिए निकल जाते थे, किन्तु आज कल वे आलसी बन कर अपने बंगलों में देर तक पड़े रहते हैं । आलसी और स्वकर्त्तव्य में प्रमादी बन जाने के कारण जैसे आर्यों का राज्य नष्ट हुआ वैसे ही गोरों का राज्य भी इनके आलसी और विलासी बन जाने के कारण नष्ट हो जायेगा ।

स्वराज्य के प्रति ललक को स्वामी जी ने मनुष्य मात्र के लिए नितान्त सहज और स्वाभाविक माना । जब उन्होंने संस्कृत वाक्य-प्रबोध की रचना की, उस समय अफगानों और अंग्रेजों के बीच युद्ध चल रहा था । अंग्रेज शक्ति प्रबल थी और अफगान उनके समक्ष लगातार हार रहे थे, तथापि उन्होंने सीमान्त प्रान्त में बसी अंग्रेजी छावनियों पर हमला करना नहीं छोड़ा । इसी तथ्य का उल्लेख स्वामी जी ने संस्कृत वाक्य-प्रबोध के राजसभा प्रकरण में इस प्रकार किया है- ''पराजिता अपि यवना अद्यापि उपद्रव न त्यजन्ति ।'' हारे हुए मुसलमान (वस्तुतः अफगान) अब भी उपद्रव (अंग्रेजों को तंग करना ही उपद्रव है ।) नहीं छोड़ते । इसके उत्तर में महाराज ने लिखा- ''अयं खलु पशुपक्षिणामपि

हजार वर्ष पूर्व तक रही और महमूद गजनवी और मोहम्मद गौरी के आक्रमणों के पश्चात् देश पराधीनता के शिकंजे में फंस गया ।

भारतीय स्वराज्य के विनाश के लिए स्वामी जी ने परस्पर की फूट, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों, अशिक्षा तथा आलस्य एवं प्रमाद पूर्वक विलासी जीवन व्यतीत करने को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने लिखा–''जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तो तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है । आपस की फूट से कौरव और पाण्डवों का सत्यानाश हो गया परन्तु अब भी वही रोग पीछे लगा है।'' स्वामी दयानन्द ने स्वराज्य-प्राप्ति के साधनों में सत्याग्रह को सर्वोपरि स्थान दिया था। पाठक शायद यह पढ़ कर चौकेंगे क्योंकि प्रचलित मान्यता के अनुसार तो महात्मा गांधी ही सत्याग्रह के प्रवर्त्तक हैं । स्वामी दयानन्द का भी सत्य के प्रति प्रबल आग्रह था । उनकी सत्य, न्याय और धर्म में अगाध आस्था थी । अपने जीवन के दर्शन को उन्होंने भर्तृहरि के निम्न श्लोक के आधार पर व्याख्यात किया–

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

नीति निपुण लोग निन्दा करें या स्तुति, धन का आगम हो या घर आई लक्ष्मी चली जाये । आज ही मृत्यु हो जावे या युगों लम्बी आयु मिले, किन्तु सत्य और न्याय के मार्ग से धीर पुरुष कभी विचलित नहीं होते । सत्य के लिए हर कठिनाई को सहन करना और निर्भीक भाव से यह कहना कि लोग चाहे मेरी अंगुलियों को बत्ती बना कर जला ही क्यों न दें मैं सत्य से कभी विचलित नहीं होऊंगा । दयानन्द के सत्याग्रही होने का प्रबल प्रमाण है ।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रति उनमें अविचलित निष्ठा थी । उन्होंने छलेसर के ठाकुर गोपालसिंह के पुत्र को स्वदेशी वस्त्र पहनने की प्रेरणा दी । उन्हीं के आदेश को मान कर जोधपुर के मुख्य मन्त्री (तत्कालीन मुसाहब आला) कर्नल महाराज प्रतापसिंह ने अपनी सेना के सिपाहियों तथा अन्य राजकर्मचारियों को खादी (मारवाड़ में इसे रेजा कहते हैं) के वस्त्र धारण करने के लिए कहा । भारतवासियों को हिन्दी जैसी सर्वजन स्वीकृत भाषा के द्वारा एक सूत्र में बांधने का विचार भी महाराज के मन में ही सर्वप्रथम उदय हुआ था । स्वयं गुजराती भाषी होने, लेखन, शास्त्रार्थ तथा प्रवचनों में प्रारम्भ में संस्कृत का प्रयोग करने पर भी जब उन्हें केशवचन्द्र सेन ने हिन्दी को अपनाने का सुझाव दिया तो महाराज

स्वभावोऽस्ति, यदा कश्चित् तद्गृहादिक ग्रहीतुमिच्छेत् तदा यथाशक्ति युद्धयन्त एव''। अर्थात् यह तो पशु-पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उनके घर (घोंसले) आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब वे यथाशक्ति युद्ध करते ही हैं । व्यञ्जना से महाराज यह कहना चाहते हैं कि जब पशु पक्षी भी अपने घर को सहजतया नहीं छोड़ सकते तो स्वमातृभूमि पर विदेशियों के अधिकार को कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र कब तक सहन करेगा ।

स्वामी दयानन्द स्वराज्य की भावना को देशवासियों में बद्धमूल करने के लिए कृत संकल्प थे । तथापि वे जानते थे कि अभी ऐसा समय नहीं आया है कि शस्त्रों के द्वारा विदेशी सत्ता को हराया जा सके। वे १८५७ के परिणामों को देख चुके थे । उनका यह दृढ़ विश्वास था कि स्वतन्त्रता भी तभी चिरस्थायी हो सकती है जब समाज में एकता, दृढ़ता तथा सुसंस्कारिता के भाव आयें । सामाजिक अभिशापों से अभिशप्त, अशिक्षित, अन्धविश्वासों एवं मूढ़ विश्वासों से जकड़े भारतवासी स्वाधीनता कैसे तो प्राप्त कर पायेंगे और सामाजिक समरसता के अभाव में उनकी आजादी (यदि मिली भी तो) कैसे स्थिर हो सकेगी। तथापि यह मानना होगा कि दयानन्द स्वराज्य के प्रचारक तथा सिद्धान्त स्थापक (Theoretician) ही थे । जिन लोगों ने हाथ में तलवार लेकर अथवा अश्वारोही होकर उनके १८५७ के संग्राम में भाग लेने की बात कही है, उन्होंने दयानन्द के वैचारिक धरातल को कभी समझा ही नहीं।

स्वामी जी ने देशवासियों में देशभक्ति के भाव जगाने के लिए आर्यावर्त्त के पुरातन गौरव का व्याख्यान किया । उन्होंने लिखा–''यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है --- जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रंशसा करते हैं और आशा रखते हैं । पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारणमणि है कि जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं । देशवासियों में स्वदेश की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए दयानन्द ने यत्र तत्र भारतीय इतिहास का पुनराख्यान किया। पूना प्रवचनों में छः व्याख्यान ऐसे हैं जो इतिहास विषय पर ही हैं। सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास के अन्त में युधिष्ठिर से आरम्भ कर पृथ्वीराज चौहान तक के आर्य राजाओं की नामावली को उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्र से उद्धृत किया । ऐसा करने में उनका प्रयोजन अपने पाठकों को यह बतलाना ही था कि इस देश में स्वाधीनता आज से लगभग एक

यह तो सत्य है कि स्वामी दयानन्द पश्चिमी भाषा (अंग्रेजी) तथा पश्चिम की भावधारा के साथ सीधे कभी नहीं जुड़े किन्तु ज्यों ज्यों वे राष्ट्रीय प्रश्नों में अधिक रुचि लेने लगे और धर्मोद्धार तथा समाज सुधार के साथ साथ उनका राष्ट्रनिर्माण का कार्य अधिक तीव्र होने लगा, वे पश्चिमी देशों की राजनीति, वहाँ की शासन-पद्धति तथा वहाँ के लोगों की भारत में दिलचस्पी जैसे विषयों के बारे में अधिकाधिक जानकारी लेने लगे। पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखे अपने पत्र में उन्होंने पूछा कि क्या उनकी महारानी विक्टोरिया से भेंट हुई है तथा क्या वे कभी ब्रिटिश संसद् में गये हैं । उन्होंने मोनियर विलियम्स तथा मैक्समूलर आदि विद्वानों के वेद विषयक विचारों को जानने में भी रुचि दिखलाई, दयानन्द ने अपने इस पत्र में एक अत्यन्त मार्मिक श्लोक लिखा जो देशवासियों के घोर दारिद्र्य तथा यूरोपीय म्लेच्छ जातियों (वे सभी यूरोपीय देश जो भारत का सतत आर्थिक शोषण कर रहे थे ।) द्वारा इस देश को पीड़ित किये जाने का हृदयद्रावक चित्र खींच देता है । वह श्लोक यह है-

गत्वा पारलिमेंटसज्जनसभां व्याख्यानमाख्यावरम्,
दत्त्वा भारतवर्षपूर्वनियमप्रेक्षावताँस्तान् कुरु ।
पश्येयुर्यत ईदृशं निजदशादुःखं द्रुतं दुःखिनाम्,
म्लेच्छा म्लेच्छतया च भारतजनान् संपीडयन्तीति तत् ॥

अर्थात् आप वहाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट नामक सज्जनों की सभा में जाकर और वेदादि शास्त्रानुकूल व्याख्यान देकर उन संसत् सदस्यों को प्राचीन भारतीयों के सौजन्यादि गुणों के नियम से परिचित करायें, जिससे वे शीघ्र ही दुःखित भारतीयों के दुःख दारिद्र्य को देखें कि किस प्रकार म्लेच्छ लोग (अंग्रेज) म्लेच्छपने से भारतीय लोगों को पीड़ित कर रहे हैं। इसी पत्र के १७ वें श्लोक का भाव यह है कि तुम्हें पार्लियामेंट में जाकर यह सब कहना चाहिए ताकि भारतवासियों पर होने वाले अत्याचार बंद हो सकें ।

वस्तुतः दयानन्द के समान देशवासियों की अशेष दरिद्रता, दुःख तथा उनमें विद्यमान अन्धविश्वासादि हानिकर विचारों को देख कर स्वयं दुःखी होने वाले महाप्राण व्यक्ति उस युग में विरले ही होंगे। जो व्यक्ति अपनी सहोदरा बहिन और प्राण-प्रिय पितृव्य (चाचा) की मृत्यु पर एक बूंद आंसू नहीं गिराता, वही दीन, विधवा-अनाथों की दुर्दशा को देख कर खून के आंसू बहाता है । वस्त्र के अभाव में एक अनाथा स्त्री को बिना कफन के अपने प्रिय पुत्र को नदी में प्रवाहित करते देख कर जो वीतराग संन्यासी अपने आंसुओं को नहीं रोक सका, उसकी देशभक्ति सन्देह से परे है ।

ने उसे विनम्र भाव से स्वीकार किया । जब भारत सरकार ने शिक्षा के माध्यम का निर्णय करने के लिए मि॰ हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया तो स्वामी जी की प्रेरणा से मेरठ तथा कानपुर आदि नगरों की आर्यसमाजों ने उक्त सज्जन को आवेदन पत्र भेज कर निवेदन किया कि हिन्दी को ही शिक्षा का प्रमुख माध्यम रक्खा जाये। इन आवेदन-पत्रों में नागरी लिपि की उत्कृष्टता तथा फारसी लिपि की अवैज्ञानिकता को अनेक उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया था। राष्ट्रभाषा के रूप में आर्यभाषा (हिन्दी) को प्रतिष्ठित करवाना स्वराज्य के लक्ष्य की ओर बढ़ाया गया एक सुदृढ़ कदम था ।

स्वामी दयानन्द यह भी मानते थे कि जब तक भारतवासी आर्थिक दृष्टि से उन्नत नहीं होंगे, उनकी सर्वग्रासी दरिद्रता का विनाश नहीं होगा, तब तक स्वराज्य प्राप्ति भी दिवास्वप्न की भांति ही रहेगी। गोरक्षा के लिए उठाये गये उनके कदम देश के पशुधन की रक्षा और अभिवृद्धि तथा देश की आर्थिक उन्नति के लिए किये गये उनके उपायों की श्रेणी में ही आते हैं । गोरक्षा के प्रति दयानन्द की प्रतिबद्धता "गोमाता के प्राण बचाओ, गाय हमारी माता है ।" जैसे सस्ते किन्तु भावुकतापूर्ण नारों से परिचालित नहीं थी । उन्होंने अपने ग्रन्थों में गाय को कहीं 'माता' कह कर नहीं पुकारा, किन्तु वे उसकी उपयोगिता तथा गुणवत्ता के कारण ही उसे महत्त्व देते हैं । गाय को पशु कहने के कारण तत्कालीन सनातनी समुदाय दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति अपने क्षोभ को बहुशः प्रकट करता था, इस तथ्य के अनेक प्रमाण मेरे पास हैं ।

स्वामी दयानन्द देश के द्रुतगति से औद्योगिक उन्नति करने के प्रबल पक्षपाती थे । १९ वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप के जीवन में परिवर्तन कर दिया था । कल कारखानों, उद्योग धन्धों तथा वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति के साथ साथ पश्चिम के देशों को आर्थिक समृद्धि मिल रही थी । भारत तो उस समय तकनीक और वैज्ञानिक प्रगति की पहली सीढ़ी पर भी नहीं चढ़ पाया था । दयानन्द ने अपने देश के छात्रों को जर्मनी में जाकर उद्योगों और कला कौशल सिखाने के लिए उस देश के एक प्राध्यापक प्रो॰ वाइज से विस्तृत पत्राचार किया था । स्वामी जी को उक्त प्राध्यापक ने जो पत्र भेजे थे, वे सभी उपलब्ध हैं तथा इस निबन्ध के लेखक द्वारा हिन्दी में अनूदित भी किये जा चुके हैं, किन्तु स्वामी दयानन्द द्वारा प्रो॰ वाइज को भेजे गये पत्र उपलब्ध नहीं होते । स्वामी जी के असामयिक निधन के कारण उक्त योजना का क्रियान्वय नहीं हो सका, तथापि दयानन्द का स्वदेश हित के लिए देश के अर्थतन्त्र को मजबूत बनाने का संकल्प निश्चय ही अभिनन्दनीय है।

स्वामी दयानन्द ने प्रजातन्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों को सर्वाधिक महत्त्व दिया था । यही कारण है कि अपने ग्रन्थों में उन्होंने जहाँ जहाँ राजनीति, शासन-नीति तथा न्याय-व्यवस्था आदि का उल्लेख किया है वहाँ जनतान्त्रिक मूल्यों को सर्वोपरि बताया । वे राजा को सभा के अधीन रह कर कार्य करने के लिए कहते हैं । उन्होंने लिखा है कि स्वतन्त्र (स्वेच्छाचारी) राजा प्रजा का नाश कर डालता है । दयानन्द वंशानुगत राजा को नहीं मानते । उनकी दृष्टि में प्रजा द्वारा नियुक्त या चुनी हुई सभा का सभापति ही राजा है । प्रजातन्त्र के मूल्य तो उन्हें इतने प्रिय थे कि उन्होंने स्वस्थापित आर्यसमाज को भी प्रजातान्त्रिक आधार पर ही खड़ा किया तथा भक्त जनों के आग्रह को अस्वीकार कर कभी भी सर्वोच्च गुरु या सर्वाध्यक्ष जैसा एकाधिकार नहीं लिया।

उपर्युक्त विवेचन से दयानन्द के राष्ट्रवादी विचारों तथा स्वराज्य विषयक उनके चिन्तन के कुछ आयाम स्पष्ट होते हैं । यदि दयानन्द की मानसिक एवं वैचारिक प्रक्रिया का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी ने स्वराज्य के विचार को तो पल्लवित पुष्पित किया था किन्तु वे किसी भी प्रकार की सैनिक हलचल में न तो कभी सम्मिलित हुए और न उसका कभी नेतृत्व ही किया । सर्वप्रथम इतिहासकार पं० जयचन्द्र विद्यालंकार तथा उनके सहयोगी पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार ने अपने ग्रन्थों में स्वामी दयानन्द के १८५७ की क्रान्ति में भाग लेने की सम्भावना प्रकट की थी । यह उनका अनुमान मात्र था और स्वमत की पुष्टि के लिए उन्होंने कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिया था । कालान्तर में तो विद्यालंकार द्वय की उक्त स्थापना का क्षीण आधार लेकर कल्पना प्रवण लोगों ने तिल का ताड़ बना दिया । किसी ने उन्हें मेरठ के शिवमन्दिर का पुजारी बाबा औघड़नाथ बना दिया तो किसी अन्य ने १८५७ के प्रथम शहीद मंगल पाण्डे से उनकी भेंट करा दी । जब इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ तो एक अन्य कल्पना प्रिय व्यक्ति ने हरिद्वार में १८५७ के सभी प्रमुख सेनानियों नाना साहब, लक्ष्मी बाई, कुंवरसिंह, तात्या टोपे, अजीमुल्ला खां आदि को एकत्र कर, उनसे बाकायदा स्वामी जी का इण्टरव्यू करवा दिया और रोती हुई लक्ष्मी बाई द्वारा स्वामी जी को एक हजार रुपये भेंट में भी दिलवा दिये । यह गप्प गढ़नेवाला व्यक्ति भूल गया कि इसके कुछ बाद ही गुरु दक्षिणा के अवसर पर दयानन्द तो प्रज्ञाचक्षु जी की भेंट के लिए कुछ लौंगों का जुगाड़ भी कठिनाई से कर सके थे ।

वस्तुतः १८५७ की हलचल का विस्तृत और एक एक तिथि के क्रम से स्वदेशी तथा विदेशी इतिहासकारों ने विवरण प्रस्तुत किया

है । अंग्रेजी में के तथा मालेसन के इतिहास प्रसिद्ध हैं तो भारतीय इतिहासज्ञों में विनायक दामोदर सावरकर, रमेशचन्द्र मजूमदार तथा डा॰ रामविलास शर्मा रचित १८५७ के इतिहासों में सम्पूर्ण घटनाचक्र का तथ्याधारित विवरण दिया गया है । वस्तुतः इसमें दयानन्द की भूमिका का आभास तक किसी ने नहीं दिया । रानी लक्ष्मी बाई, कुंवरसिंह तथा नाना साहब आदि के क्रिया-कलापों का विस्तृत ब्यौरा उनके जीवन-चरितों में उपलब्ध है, किन्तु वहां भी दयानन्द कहीं दिखाई नहीं पड़ते। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब जयचन्द्र विद्यालंकार आदि के विचारों को अन्यथा उपबृंहित किया गया तो सर्व श्री हरविलास शारदा, युधिष्ठिर मीमांसक, इन पंक्तियों का लेखक, प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु, ज्वलन्तकुमार शास्त्री गुजरात के टंकारा ग्राम निवासी प्रा॰ दयाल आर्य आदि सभी चिन्तकों ने उपर्युक्त उपपत्ति को भ्रममूलक ठहरा कर उसका निराकरण किया । दयानन्द जीवन के गम्भीर अध्येता, आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा॰ जार्डन्स ने अपनी पुस्तक में ऐसे दस्तावेजों को जाली ठहराया ।

इसी प्रकार की एक कल्पनामूलक घटना कलकत्ता में स्वामी दयानन्द की गर्वनर लार्ड नार्थब्रुक से भेंट विषयक प्रचारित की गई । इसके मूल में अम्बाला के एक वयोवृद्ध आर्य दीवान अलखधारी द्वारा लिखित एक लेख था जो उन्होंने मात्र स्मृति के आधार पर ही १८६३ में मेरठ कालेज की मैगजीन में लिखा था ।

कालान्तर में इसे भूरिशः प्रचारित किया गया किन्तु प्रा॰ ईश्वरनाथ शिवपुरी द्वारा लन्दन के अभिलेखागार में लार्ड नार्थब्रुक के द्वारा भेजे गये दस्तावेजों की परताल की गई तो पता लगा कि ऐसी किसी भेंट का उल्लेख उक्त दस्तावेज में नहीं है । डा॰ शिवकुमार गुप्त ने अपने शोध ग्रन्थ 'आर्यसमाज एण्ड दि ब्रिटिश राज' में अनेक हेतु और प्रमाण देकर इस तथाकथित भेंट का प्रतिवाद किया है

यह सब कुछ होने पर भी दयानन्द की स्वराज्य विषयक अवधारणा तथा भारत को स्वाधीन, स्वतन्त्र एवं निर्भीक स्वराज्य के रूप में देखने की उनकी लालसा के महत्त्व को न्यून नहीं किया जा सकता दयानन्द के स्वराज्य विषयक इसी चिन्तन से अनुप्राणित होकर कालान्तर में श्याम जी कृष्ण वर्मा, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, गेंदालाल दीक्षित, तथा सोहनलाल पाठक जैसों ने अपने प्राणों का बलिदान देकर देश की आजादी के संघर्ष को गति दी । इसी प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किये गये वैधानिक संघर्ष में भाग लेने वाले आर्यसमाजियों की सूची तो बहुत लम्बी है । स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द

आदि के नाम तो जाने पहचाने हैं किन्तु उन लाखों आर्यसमाजियों के नाम भी कौन जानता है जो कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलनों में भाग लेते रहे, वर्षों तक कारागार की यातनाएँ सहकर तथा आजादी के लिए तिल-तिल जल कर जिन्होंने स्वाधीनता के स्वप्न को यथार्थ में परिणत कर दिया ।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए निज का बलिदान करने वाले इन हुतात्माओं ने स्वामी दयानन्द के उदात्त व्यक्तित्व से जिस प्रकार प्रेरणा पाई, उसे स्वतन्त्रता के इतिहास में स्मरण किया गया है । राजस्थान का वह बारहठ (चारण) परिवार जिसने स्वातन्त्र्ययज्ञ में बड़ी से बड़ी आहुति देने में भी संकोच नहीं किया, ठाकुर केसरीसिंह का था । ठाकुर केसरीसिंह तथा उनके शहीद पुत्र प्रतापसिंह ने देश के लिए किस प्रकार की यन्त्रणाएं भोगीं और स्वयं तथा परिवार की सर्वथा अनदेखी की, इसे सम्भवतः अनेक लोग नहीं जानते । ये ठाकुर केसरीसिंह बारहट कृष्णसिंह के पुत्र थे जिन्हें स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। कृष्णसिंह के देशभक्ति के भाव ही केसरीसिंह तथा उनके पुत्र कु० प्रतापसिंह में संक्रमित हुए । कृष्णसिंह ने उदयपुर में स्वामी जी के सम्पर्क में आने तथा उनसे ज्ञान एवं विद्या रूपी वित्त को प्राप्त करने का स्पष्ट उल्लेख अपनी निम्न कविता में किया है—

तहं मिले मोहि ऋषि दयानन्द ।
जो विद्यावारिधि अरु स्वच्छन्द ।
जिन ज्ञान देय किय अमर चित्त ।
पुनि दियहु सुविद्या रूप वित्त ।

उदयपुर के महाराणा फतहसिंह (इनके पिता महाराणा सज्जनसिंह स्वामी दयानन्द के प्रत्यक्ष शिष्य थे ।) को वायसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में आयोजित एक शाही दरबार में उपस्थित होने का आदेश किया । अन्य सभी राजाओं को भी इसमें आना था । जब महाराणा फतहसिंह ने दिल्ली जाना स्वीकार कर लिया तो राजस्थान के कतिपय देशभक्त सामन्तों को यह अखरा कि मेवाड़ के जिन महाराणाओं ने सदा ही हिन्दुओं के गौरव की रक्षा की है और जो कभी दिल्ली के दरबारी नहीं रहे, आज अंग्रेजी शासन में वही महाराणा शाही दरबार में जाकर वायसराय के सम्मुख एक अधीनस्थ माण्डलिक राजा की भांति खड़े हों । उन्होंने विचार किया कि महाराणा को दिल्ली जाने से रोकना चाहिए । अब यह विचार उठा कि महाराणा को दिल्ली न जाकर हिन्दुओं के स्वाभिमान की रक्षा करने तथा स्वातन्त्र्य सूर्य महाराणा प्रताप की विरासत को यथावत् रखने की प्रेरणा कोई देशभक्त चारण कवि ही

दे सकता है । सब की नजर बारहठ केसरीसिंह पर गई, उनसे अनुरोध किया गया कि वे डिंगल (राजस्थानी भाषा का प्राचीन रूप) में ऐसे काव्य की रचना करें जिसे पढ़ कर महाराणा फतहसिंह का स्वाभिमान जागृत हो और वे दिल्ली न जायें । बारहठ जी ने तुरन्त तेरह सोरठों की रचना की और सामन्तों को सुनाया । इन फड़कते हुए सोरठों में मेवाड़ के स्वाधीनता प्रेमी महाराणाओं के इतिहास को दोहराते हुए कहा गया है कि सीसोदिया क्षत्रिय वंश के जिन मेवाड़ी राजाओं ने कभी दिल्ली के आगे सिर नहीं झुकाया, उन्हीं के वंशज महाराणा फतहसिंह को आज दिल्ली की गोद में बैठना क्यों अच्छा लग रहा है ।

इससे पहले कि महाराणा फतहसिंह के पास ये सोरठे पेश किये जाते, उनकी स्पेशल ट्रेन उदयपुर से दिल्ली के लिए रवाना हो चुकी थी । कवि द्वारा रचित सोरठे महाराणा को दिखाई जाने वाली डाक में थे । यह डाक खोली गई तब तक स्पेशल मेवाड़ की सीमा पार कर अजमेर की सीमा में आ चुकी थी । इन चेतावनी भरे सोरठों (इनका राजस्थानी नाम है चेतावनी रा चूंगटिया) को पढ़कर महाराणा का मन बदल गया । यद्यपि वे दिल्ली पहुंच गये किन्तु उन्होंने निश्चय किया कि वायसराय के दरबार में हरगिज शामिल नहीं होंगे । उन्होंने तुरन्त अपनी स्पेशल को उदयपुर लौटने का आदेश दिया और महाराणा की विशेष रेलगाड़ी दिल्ली से उदयपुर आ गई । इस प्रकार मेवाड़ के अधिपति को दिल्ली आकर भी शाही दरबार में उपस्थित न होता देख वायसराय कर्जन के क्रोध और क्षोभ का कोई पार नहीं रहा । किन्तु वह कर ही क्या सकता था । देश भर के राजा और नवाब अपने निश्चित आसनों से उठ कर वायसराय को प्रणतिपूर्वक अभिवादन कर उन्हें नजरें (भेंट) पेश कर रहे थे, किन्तु उदयपुर की कुर्सी खाली ही रही । जब महाराणा अपनी राजधानी में लौट आये तो निश्चय हुआ कि उन्हें देश और धर्म की अस्मिता की रक्षा करने के लिए बधाई दी जाये, उनका वर्धापन किया जाये । अब तक ठाकुर केसरीसिंह अपने जागीर के गांव में जा चुके थे । अतः छन्दोबद्ध बधाई देने का भार जोबनेर (जयपुर) के ठाकुर कर्णसिंह पर आया । ठाकुर कर्णसिंह भी स्वामी दयानन्द के दृढ़ अनुयायी थे । उन्हें यह भी पता था कि किस प्रकार महाराणा फतहसिंह के पिता महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामी जी के निकट रह कर ही स्वदेशोत्थान का पाठ पढ़ा था । अतः उन्होंने जब महाराणा की सेवा में बधाई के पांच सोरठे लिख कर भेजे तो अन्तिम में यही उल्लेख था कि गुरु दयानन्द से ज्ञान पाकर ही सीसोदिया राणाओं के हृदय में राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है–

शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, एक जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो । यही नहीं कि उनमें केवल ऐसी सदिच्छा और उत्साह ही था वरन् वह इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में कृतकार्य भी हुए थे । अत एव स्वामी दयानन्द केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद-व्याख्याता ही नहीं थे, केवल शास्त्रों के मर्मोद्घाटक ही नहीं थे, केवल तार्किक ही नहीं थे, केवल दिग्विजयी पण्डित ही नहीं थे, वह भारतीय एकता (राष्ट्रीयता एवं स्वराज्य भावना) के स्थापनकर्त्ता भी थे । इसलिए भारत की आचार्यमण्डली में दयानन्द का स्थान विशिष्ट और अद्वितीय है।''

प्रसिद्ध देशभक्त तथा साहित्यकार कन्हैयालाल मुन्शी ने लिखा है-''भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित होने के बाद, दयानन्द सरस्वती के साथ राष्ट्रीयता की पहली मंजिल का उदय हुआ । १८५७ के राष्ट्रीय विद्रोह की असफलता में निहित अपमान से परितप्त भारत में उन्होंने ही सर्वप्रथम राष्ट्रीयता का विकास किया ।''

प्रो॰ भवानीलाल भारतीय, ८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

आर्य सूक्ति-सुधा : लेखक-प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु । आर्य सामाजिक साहित्य के इतिहास में प्रथम बार ही आर्यसमाज के इतने विद्वानों, महात्माओं व संन्यासियों की वैदिक सिद्वान्तों पर सूक्तियाँ संगृहीत करके छापा जा रहा है । वैदिक धर्मियों के लिए यह पुस्तक ज्ञानकोश है।

दीप्ति : लेखक-स्वामी विद्यानन्द सरस्वती । विवादास्पद विषयों का विवेचन । स्वामी जी के कुछ महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह ।

वैदिक ज्ञानधारा : संकनलकर्त्ता-प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु । आर्यसमाज की पहली व दूसरी पीढ़ी के संन्यासी, महात्मा, नेता व विद्वान् सभी उच्च कोटि के गवेषक, लेखक व वक्ता थे, इन्हीं पुराने आर्य लेखकों, विचारकों के भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे गए महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह।

बिखरे मोती : लेखक- डा॰ भवानीलाल भारतीय, आर्य महापुरुषों के रोचक, शिक्षाप्रद संस्करण, शास्त्रार्थों की नोक-झोंक, आर्यों के आदर्श चरित्र को प्रख्यापित करने वाले जीवन प्रसंग आदि।

Bodh Kathayan : Mahatma Anand Swami : Translation of Swamiji's book 'बोध कथाएँ' ।

How to Lead Life : Mahatma Anand Swami, Translation of Swamiji's book 'दुनिया में रहना किस तरह' ?

मेदपाट कर मोद हरवल साहां हांकिया ।
चीत्यो चित्त सीसोद, गुरु दयानन्द ज्ञान तें ॥

यह तो एक उदाहरण मात्र है । स्वामी दयानन्द से स्फूर्ति और प्रेरणा पाकर जिन देशभक्तों ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए बड़े से बड़े बलिदान दिये उनकी गाथाओं को लेखबद्ध करने के लिए प्रचुर श्रम तथा स्थान की आवश्यकता है । यदि स्वामी दयानन्द अपने देशवासियों में राष्ट्रभक्ति के भाव तथा राजनैतिक चेतना उत्पन्न करने के इच्छुक नहीं होते तो वे क्यों सत्यार्थप्रकाश का छठा समुल्लास लिखते और क्यों आठवें समुल्लास में इस तथ्य का दृढ़ता से प्रतिपादन करते कि आर्य लोग ही भारत के आदिम निवासी हैं और इस देश में उनके अन्य देशों से आने की बात सर्वथा कल्पित तथा धूर्ततापूर्ण षड्यन्त्र का ही एक हिस्सा है । वेदार्थ विवेचन के लिए मुख्यतया रचित ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, संस्कृत भाषा को बोलने में सहायक ग्रन्थ संस्कृतवाक्य-प्रबोध तथा बालकों को व्यवहार ज्ञान कराने के लिए लिखे गये व्यवहारभानु जैसी पुस्तकों में राजधर्म विषय को लिखना क्या यह सूचित नहीं करता कि स्वामी दयानन्द अपने देशवासियों को राष्ट्रधर्म में दीक्षित करना चाहते थे । सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकरण को राजधर्म कहा है तो भूमिका में इसे 'राजप्रजा धर्म' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है । यही विषय संस्कृत वाक्यप्रबोध में राजप्रजा सम्बन्ध तथा राजसभा प्रकरण शीर्षक दो अध्यायों में आया है । व्यवहारभानु में अन्धेर नगरी और चौपट (स्वामी जी ने इसके लिये गवर्गण्ड शब्द का प्रयोग किया है।) राजा का किस्सा लिख कर स्वामी जी ने निरंकुश, स्वेच्छाचारी और प्रजापीड़क राजाओं के विनाश की घोषणा की है ।

अधिक क्या, जिस स्वाधीनचेता ऋषि ने अपने परम उपास्य परमात्मा की प्रार्थना करते समय भी उससे धन, सम्पत्ति, वैभव आदि की याचना न कर यही प्रार्थना की कि हे महाराजाधिराज, ऐसी कृपा कीजिये कि अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों, उस महापुरुष का स्वराज्य चिन्तन कितना प्रखर, संक्रामक तथा उग्र होगा, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। अन्तत: कहना पड़ता है कि भारतवासियों में राष्ट्रभावना को सुदृढ़ कर उनमें राष्ट्रीय एकता तथा स्वातन्त्र्य भाव को उद्दीप्त करने वाला दयानन्द अपने युग का एक विशिष्ट महाप्राण व्यक्ति था । दयानन्दचरित के गम्भीर समालोचक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का निम्न विश्लेषण हमें पूर्णतया सत्य तथा सटीक प्रतीत होता है-''इस संन्यासी (दयानन्द) के हृदय में यह प्रबल इच्छा और उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२०-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामवेद शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	४०.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
प्रभात-वन्दन	८.००
शिवसंकल्प	८.००

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

न्यायदर्शनम् भाष्य जो शास्त्र हमें तर्क-वितर्क का ज्ञान देता है, हमारे भीतर की बन्द आँखों को खोलकर हमें तर्क करने का ज्ञान और साइंस प्रदान करता है, उसी का नाम न्यायशास्त्र है और वही न्यायदर्शन है। रूखे व दुरूह कहे जानेवाले इस विषय को लेखक ने अत्यन्त सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। **मूल्य : रु० १५०-००**

वैशेषिकदर्शनम् भाष्य सृष्टि-रचना में जो सूक्ष्म मूल तत्त्व हैं उनका विज्ञानपरक विवेचन इस दर्शन में किया गया है। इसमें पदार्थों के धर्म की व्याख्या है। यह ज्ञान भी सभी के लिए उपयोगी और अनिवार्य है।

मूल्य : रु० १२५-००

सांख्यदर्शनम् भाष्य लम्बे समय तक यह कुतर्क चलता रहा है कि 'सांख्यदर्शन' अनीश्वरवादी है। इस भ्रान्ति का उन्मूलन करने के लिए आचार्य उदयवीर जी को तत्सम्बन्धी विपुल साहित्य, इतिहास, वाग्जाल और विविध भाष्यों का अध्ययन-चिन्तन-मनन करके इस सत्य को उघाड़ना पड़ा है कि सांख्यदर्शन अन्य दर्शनशास्त्रों का ही पूरक है। विषय गूढ़ है, किन्तु सरलता से समझा जा सकता है। **मूल्य : रु० १००-००**

योगदर्शनम् भाष्य योग का सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्षरूप परमानन्द की प्राप्ति। मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य भी 'ब्रह्म का साक्षात्कार' है। 'योगदर्शन' इसी लक्ष्य-प्राप्ति का साधन है। योग-सूत्रों की सर्वाङ्ग एवं सम्पूर्ण व्याख्या जिस रोचक शैली में आचार्य उदयवीर जी ने की है, उसे विद्वज्जनों और जनसाधारण ने मुक्तकण्ठ से सराहा है।

मूल्य : रु० १००.००

वेदान्तदर्शनम् भाष्य (ब्रह्मसूत्र) महर्षि वेदव्यास बादरायण ने ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना की थी। लेखक ने ब्रह्मसूत्र पर अपना निष्पक्ष व निर्भ्रान्त विद्योदयभाष्य प्रस्तुत करके हमारे वैदिक ज्ञान-विज्ञान को पुनः सार्वभौम और सार्वशिरोमणि कर दिखाया। **मूल्य : रु० १८०-००**

मीमांसादर्शनम् भाष्य मध्यकाल में कुछ ऐसी विडम्बना हुई कि विरोधी मतों की देखादेखी वैदिक वाक्यों के अर्थों में भी अनर्थ होने लगा। यज्ञों में भी पशु और नर बलि मान्य हो गई। आचार्य उदयवीर जी अन्य दर्शनों के भाष्य के बाद, जीवन के अंतिम वर्षों में मीमांसा-दर्शन के तीन ही अध्यायों का भाष्य करके दिवंगत हो गए। इस भाष्य की विशेषता यह है कि विद्वानों की दृष्टि में यह शास्त्र-सम्मत भी है और विज्ञानपरक भी। यज्ञों में पशु हिंसा की शंकाओं का सहज समाधान करके विद्वान् भाष्यकार ने पाठकों और शोधकर्ताओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

मूल्य : रु० ३५०-००

सांख्यदर्शन का इतिहास सांख्यदर्शन के इतिहास पर व्याप्त भ्रान्तियों को मिटाने के लिए लेखक ने इसके इतिहास का मन्थन व मनन किया। इतिहास और दर्शन का यह अनूठा संगम है। कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया।

मूल्य : रु० २५०-००

सांख्यसिद्धान्त सांख्यसिद्धान्त में दो प्रकार के मूल तत्त्वों का विवेचन है। एक है 'पुरुष' और दूसरा 'प्रकृति'। लेखक ने वर्षों के गहन अनुशीलन व शोध के पश्चात् तटस्थ और निष्पक्ष भाव से विभिन्न मन्तव्यों का तुलनात्मक विवेचन करके इस ग्रन्थ की रचना की है। **मूल्य : रु० २००-००**

वेदान्तदर्शन का इतिहास इतिहास चाहे राजा-महाराजाओं का हो अथवा दार्शनिक साहित्य का, उसकी उपयोगिता इसी में है कि वह सत्य का बोध कराए। कुछ वर्ष पहले तक यह कहना कठिन था कि ब्रह्मसूत्रों के रचयिता व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे या दो भिन्न-भिन्न इसी प्रकार अचार्य शंकर के काल को कोई सुनिश्चित नहीं कर पाया था। इस सन्दर्भ में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी ने जिस सहजता से भ्रान्तियों का उन्मूलन किया है, उसकी विद्वान पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। **मूल्य : रु० २००-००**

प्राचीन सांख्य-सन्दर्भ सांख्यशास्त्र की अनेक आचार्यों ने विवेचना की। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल में किन-किन आचार्यों ने इसके भाष्य किये, यह सब अंधकार के गर्त में रहा। लेखक ने यत्र-तत्र बिखरे इतिहास की कड़ियाँ जोड़ीं तथा सांख्यशास्त्र के व्याख्यापरक ग्रन्थों को समझने और ऐतिहासिक दृष्टि से इस 'दर्शन' के क्रमिक विकास को जानने के लिए उपयोगी बनाया। **मूल्य : रु० १००-००**

वीर तरङ्गिणी श्री उदयवीर शास्त्री को पाठक प्रायः योग, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों के प्रकाण्ड पंडित के रूप में ही जानते हैं। वे कवि और कथाकार भी थे, आलोचक और पुरा-मर्मज्ञ भी—यह पता चलता है इस विविधा से।

मूल्य : रु० २५०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	पं० वीरसेन वेदश्रमी	४५-००
प्राणायाम विधि	महात्मा नारायण स्वामी	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	कवि कस्तूरचन्द	३-००
जीवात्मा	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	४०.००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८-००
जीवन गीत	धर्मजित् जिज्ञासु	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	महर्षि दयानन्द	३-००
व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	पं० सत्यपाल विद्यालंकार	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००
वैदिक संध्या	१-००
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००
संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
सत्संग मंजरी	६-००
Vedic Prayer	3-00

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वेद-मीमांसा	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	*पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	*लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम*	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	*अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	*लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	*ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६६०-००
चयनिका	*क्षितीश वेदालंकार*	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	*पं० रामनाथ वेदालंकार*	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	*आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति*	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	*पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण*	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	१५-००
धर्म का स्वरूप	*डॉ० प्रशान्त वेदालंकार*	५०-००
ऋषि बोध कथा	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	१०-००
वैदिक धर्म	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	२०-००
सन्ध्या रहस्य	*पं० विश्वनाथ विद्यालंकार*	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	*प्रो० रामविचार एम० ए०*	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	*ओम्प्रकाश त्यागी*	६-००
पूर्व और पश्चिम	*नित्यानन्द पटेल*	३५-००
सन्ध्या विनय	*नित्यानन्द पटेल*	६-००
गीत सागर	*पं० नन्दलाल वानप्रस्थी*	२५-००
वेद भगवान बोले	*पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)*	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	*पं० नरेन्द्र*	१५-००
आचार्य शंकर का काल	*आ० उदयवीर शास्त्री*	१०-००

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
गुरु विरजानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	त्रिलोकचन्द विशारद	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	त्रिलोकचन्द विशारद	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	सत्यभूषण वेदालंकार	३-००
महात्मा हंसराज	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	स्वामी जगदीश्वरानन्द	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	स्वामी जगदीश्वरानन्द	९००
स्वर्ण पथ	स्वामी जगीदश्वरानन्द	१२००
आचार्य गौरव	ब्र० नन्दकिशोर	५००
त्यागमयी देवियाँ	महात्मा आनन्द स्वामी	८००
हमारे बालनायक	सुनील शर्मा	८००
देश के दुलारे	सुनील शर्मा	८००
हमारे कर्णधार	सुनील शर्मा	८००
आदर्श महिलाएँ	नीरू शर्मा	८००
कथा पच्चीसी	स्वामी दर्शनानन्द	८००
बाल शिक्षा	स्वामी दर्शनानन्द	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	३००
दयानन्द चित्रावली	पं० रामगोपाल विद्यालंकार	२५००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००

जिसकी आपको प्रतीक्षा थी, छप रहा है–

सत्यार्थप्रकाश

- एक अभिनव संस्करण
- आधुनिक हिन्दी रूपान्तर

महर्षि के अमर ग्रन्थ के रूपान्तरकार हैं–आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखनी के धनी, सम्पादन कला में प्रवीण

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

स्वामी जी ने कम से कम ४५ बार इस ग्रन्थ का आद्योपान्त पाठ किया है । इसके प्रत्येक वाक्य को समझने का प्रयत्न किया है। इसमें जो छापे की अशुद्धियाँ रह गई थीं, प्रूफ व संशोधकों की असावधानी से कोई शब्द छूट गया था, इस प्रकार की सभी अशुद्धियों को ठीक कर दिया गया है ।

जैसे सत्यार्थप्रकाश के गुजराती, बंगाली, मराठी, तेलगु असमिया आदि भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, उसी प्रकार यह संस्करण आधुनिक हिन्दी रूपान्तर है । पाठ पढ़कर भाव विभोर हो उठेंगे । जो तेरहवें और चौदहवें सम्मुलासों की हिन्दी बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है, क्योंकि उस समय बाइबल और कुरान के भाष्य मुहावरेदार भाषा में उपलब्ध नहीं थे । अब इन दोनों समुल्लासों की भाषा को भी आधुनिक हिन्दी का रूप दे दिया गया है ।

पुस्तक कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज कराई गई है । सम्पूर्ण ग्रन्थ में शायद ही कोई अशुद्धि हो । बढ़िया कागज, कलापूर्ण मुद्रण, पक्की कपड़े की जिल्द । हर प्रकार से एक नयनाभिराम संस्करण है ।

आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर, अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त, यह संस्करण है।

अपने स्वाध्याय के लिए, अपने मित्रों सम्बन्धियों को भेंट देने के लिए एक प्रति अवश्य खरीदिए । इसे लेकर आप पछताएँगे नहीं ।

–अजयकुमार

1995 का कैलेण्डर

महर्षि दयानन्द के झण्डे वाले बहुरंगी चित्र के साथ अब उपलब्ध है। साईज २२"×२८" बढ़िया आर्ट पेपर पर, सुन्दर छपाई। मूल्य ५००-०० रु० प्रति सैकड़ा। आज ही अपना आदेश भेजें क्योंकि यह सीमित संख्या में ही छपा है।

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी कृत

बहुत दिनों बाद प्रकाशित कुछ पुस्तकें

प्रार्थना-प्रकाश : यज्ञ से पूर्व स्तुति-उपासना के आठ मन्त्रों की व्याख्या।
मूल्य : ८.०० रु०

प्रभात-वन्दन : प्रातःकाल पाठ करने के मन्त्रों की सरल-सुबोध व्याख्या।
मूल्य : ८.०० रु०

शिवसंकल्प : शिवसंकल्प के छह मन्त्रों की विशद व्याख्या।
मूल्य : ८.०० रु०

प्रार्थना-लोक : प्रार्थना-प्रकाश, प्रभात-वन्दन, शिवसंकल्प तीनों पुस्तकें सजिल्द, एक साथ। मूल्य : ४०.०० रु०

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

आदि जगद्गुरु शंकराचार्य को नवीन वेदान्त का प्रवर्त्तक माना जाता है। वस्तुतः शंकराचार्य और अद्वैत वेदान्त पर्यायवाची बन गए हैं। परन्तु स्वामी विद्यानन्द जी की मान्यता है कि शंकर मूलतः वेदान्ती या अद्वैतवादी नहीं थे। ऋषि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इसका संकेत मिलता है। स्वामी जी ने इस मान्यता की पुष्टि में शंकराचार्य के ग्रन्थों से अनेक प्रमाण उद्धृत किये हैं।

मूल्य : रु० ४०-००

हमारा १६६५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेद-प्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित संख्या मे ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे। यह अप्रैल ६५ में पाठकों को मिलेगा।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाज आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।